“दुर्गा सप्तशती में प्रयुक्त अलंकार व संकेत विद्या”

English version of this appears at the end of this Hindi version

माँ दुर्गा देवी (१) की असीम अनुकंपा व अनन्त कृपा के फलस्वरूप “दुर्गा सप्तशती” नाम से प्रसिद्ध प्रकरण में प्रयुक्त अलौकिक अलंकार व संकेत विद्या को मनन करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है. इसी भावना से इस लेख का संकलन, जो रूपांतर अधिक और संकलन कम है, भी हुआ है. यह लेख विद्वान मनीषी श्री आई. के. तैमिनि द्वारा लिखित अंग्रेजी पुस्तक

“हिन्दू प्रतीकों का एक परिचय” पर मुख्य रूप से आधारित है, जिसे वर्ष १९८० में “थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस, अडयार, चेन्नई-२०” द्वारा प्रकाशित किया गया था. इसके अतिरिक्त गीता-प्रेस से प्रकाशित “कल्याण” पत्रिका के वर्ष १९३४ के मुख्य “शक्ति-अंक” में दिए लेखों से भी उद्दरण दिये गए हैं. विद्वान लेखकों की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं समझी गई, क्योंकि यह लेख लाभ कमाने के लिए नहीं, वरन् महामाई के गुणगान व मित्र-समाज में निःशुल्क वितरण के हेतू संकलित किया गया. मेरा विश्वास है कि इस लेख में उद्दृत अंशं जागरूक पाठक के हृदय में महामाई के प्रति और अधिक श्रद्धा व नारी समाज के प्रति

और अधिक आदर का संचार करेंगे. अतः इस संकलन को महामाई अपने चरणों में समर्पित स्तुति-पुष्प मान कर स्वीकार करें. यह जगद्माता (२) का गुणगान चित्त-स्वरूपिणि अम्बिका महाकाली आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध सौम्य माता की स्नेह-सिक्त अनुकपां पाने के उद्देश्य से महासरस्वती को समर्पित है. महामाया मेरा यह अनुरोध स्वीकार करें और अपने चरणों में मुझ अज्ञानी को स्थान दें.

महामाया की यह दुर्गा सप्तशती नाम से प्रसिद्ध चरित्र-गाथा, मार्कण्डेय-पुराण के ८१ वें अध्याय के ७०० श्लोंकों का संग्रह है, जिन्हे तीन भागों में और १३ लघु अध्यायों में विभक्त किया गया है. आइये पहले माँ दुर्गा के चरित्र का गुणगान करें, और कथा का आनन्द लें.

कथा की भूमिका

सुरथ नाम के राजा को उसके मन्त्रियों ने षडयन्त्र करके राज्य से निष्कासित कर दिया. उधर समाधि नाम के वैश्य को भी उसकी कृतघ्न पत्नी व बच्चों ने घर से निष्कासित कर दिया. दोनों बहुत दुःखी थे व इस प्रकार वे मेधा ऋषि के आश्रम में पहुंचे. (गीता में मेधा अर्थात बुद्धि की शरण में जाने का आदेश है. "मनुष्य अपने मन और बुद्धि द्वारा अपना उद्धार करे तथा अपना पतन न करे, क्योंकि मन ही मनुष्य का मित्र भी है और मन ही मनुष्य का शत्रु भी है. जिसने अपने मन और इन्द्रियों को बुद्धि द्वारा जीत लिया है, उसके लिए मन उसका मित्र होता है, परन्तु जिनकी इन्द्रियां वश में नहीं होतीं, उसके लिए मन शत्रु के समान आचारण करता है. (गीता ६.०५-०६)") वे दोनों ऋषि से पूछने लगे, कि हे महात्मा, इस जगत् में लोग क्यों मोहग्रस्त हो कर उन्हीं पदार्थों में आसक्त रहते हैं, जो उन्हें दुःख व क्लेश प्रदान करते हैं. ऋषि ने उत्तर दिया, कि यह तो मानव जीवन का एक साधारण परन्तु सार्वभौम दृश्यमान है, जिसमें चकित होने की कोई आवश्यकता नहीं है. भगवान विष्णु की योगनिद्रा (तमोगुण प्रधान शक्ति) देवी माता (३) महामाया भगवती की अलौकिक और दिव्य माया ज्ञानियों के चित्त को भी

भ्रमित कर सकती है. प्राणियों को यही माया संसार चक्र से बाधं देती है, जिससे विवश हो कर वे आसक्त हो जाते हैं और दुःख झेलते हैं. राजा पूछते हैं, कि हे भगवन् जिन्हें आप महामाया कहते हैं, वे देवी कौन हैं, उनका अविर्भाव कैसे हुआ, तथा उनके चरित्र कौन-कौन से हैं, उनका कैसा प्रभाव, स्वरूप व प्रादुर्भाव है, यह सब कहिऐ.

ऋषि ने उत्तर में संक्षेप में ब्रह्मांड व्यापी दिव्य शक्ति देवी दुर्गा के स्वरूप का वर्णन किया और तब सुरथ और समाधि वैश्य को बताया कि किस प्रकार देवी माता देवताओं की रक्षा के लिऐ बार-बार प्रकट हो कर दैत्यों का विनाश करती हैं. (४)

देवी माता के बारम्बार प्रकट होने का रहस्य हम ११ वें अध्याय की अन्तिम दो पंक्तियों में पा सकते हैं, जिनमें देवी माता ने प्रण किया है कि जब भी देवताओं की शक्ति क्षीण होगी व असुर उन्हें अपनी विनाशकारी शक्तियों से त्रस्त करेंगे, वे उनकी सहायता के लिऐ प्रकट होंगी. (५) सप्तशती में देवी माता द्वारा अपने इसी प्रण के पालन की झांकी है, कि किस प्रकार वे प्रकट हो कर सनातन धर्म की रक्षा करती हैं.

मनुष्य सप्तशती के पाठ द्वारा अपने निजि स्वार्थ, किसी इच्छित पदार्थ की कामना-पूर्ति या सामाजिक हितों की रक्षा हेतू देवी माता की शक्ति का आवाहन् करते हैं. सप्तशती का विधि-विधान पूर्वक पाठ करने से आश्चर्यजनक रूप से, दैवी शक्तियाँ भी प्राप्त होते देखी गई हैं, और असंख्य हिन्दू, आपदाओं, व्याधियों व दरिद्रता आदि भय के निवारण हेतू इसका सहारा लेते हैं. वास्तव में ऐसे कार्यों के लिऐ सप्तशती के पाठ को बढ़ावा ही दिया जाता है. दैवी व पवित्र शक्तियों का इस प्रकार आवाहन् उचित है या नहीं, यह जानना इस लेख का उद्देश्य नहीं है.

ब्रह्म-विद्या के जानकार (थियोसोफिस्ट्स्) यह पहले ही जानते और मानते हैं, कि सम्पूर्ण सप्तशती मनुष्य के विकास क्रम की विभिन्न अवस्थाऐं हैं और दैवी शक्तियों का अवतरण मानव के अन्तःकरण में होने पर मनुष्य अपनी दुर्बलताओं व विषमताओं को लांघ कर अपनी आत्मा के विकास की अगली सीढ़ी चढ़ जाता है. प्रतीकों के सहारे कथा का अन्दरूनी

संदेश देना कोई नयी बात नहीं है. अनेक जिज्ञासु पाठकों व साधकों ने सप्तशती के विलक्षण श्लोकों का गहन अध्ययन करके यह पाया है कि यह गाथा एक कथा मात्र नहीं है, वरन् हृदय के गहन, और गुप्त रहस्यों की ओर संकेत करती है, जो यह सिद्ध करते हैं कि सात्त्विक और तामसिक शक्तियों के बीच अनवरत युद्ध चलता रहता है. यह अविरल संग्राम मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति को बाधा पहुंचाता रहता है. कुछ साधकों ने कथा में प्रयुक्त अलंकारों को मानसिक प्रगति के साथ जोड़ने की चेष्टा की है, परन्तु वे सब प्रयत्न उथले हैं, और कथा के सभी अलंकारों व लक्षणों के रहस्यों को पूर्ण तौर पर उजागर नहीं कर पाते. (मेधा ऋषि के राजा और वैश्य के साथ संवाद के शब्द व्याकरण की दृष्टि से, आध्यात्मिक और अनुबन्ध-चतुष्टय द्योतक होने से सरस, सार्थक, सगर्भ और सहेतु है. ब्रह्म-ज्ञान का वर्णन होने से यह संवाद रसयुक्त व सरस, राजा और वैश्य के मोह दूर करने के प्रयोजन से सार्थक, "ज्ञानी जनों को भी मोह होता है", ऐसा कहते हुऐ राजा का विषयों में दोष दिखाते हुए भी अपने को ज्ञानी कहने से सगर्भ, और राजा का ऋषि से ब्रह्मज्ञान देने के आग्रह से सहेतु). मन चाहता है, कि संसार वासना में आबद्ध रहे, किन्तु प्राण चाहते हैं कि भबवत्-चरणों में सर्वस्व अर्पण करके चरितार्थ हों. इसी समय युद्ध का सूत्रपात होता है (यानि देवासुर संग्राम का सूत्रपात होता है). यह संग्राम देवी ही करती हैं.

प्रथम-कथा

प्रलय के बाद महाविष्णु एकार्णव में योगनिद्रा में लीन थे और उनकी चेतनाशक्ति अन्तर्मुखी थी. सृष्टि की रचना नहीं हुई थी. तभी दो दैत्य, मधु (६) और कैटभ (७), विष्णु के कानों के मैल से उत्पन्न हुए. तुरन्त ही वे ब्रह्मा को लीलने दौड़े. ब्रह्मा ने भयभीत हो कर योगमाया का स्तवन आरम्भ किया, कि वे महाविष्णु को योगनिद्रा से उठा कर उन असुरों का विनाश करवाऐं. (८-यह मधुर स्तवन अन्त में देखें) महाविष्णु जागकर उन असुरों से बाहुयुद्ध करने लगे. ५००० वर्ष तक युद्ध करने पर भी दैत्य नहीं परास्त हुऐ, और विष्णु नें मायाशक्ति का सहारा लिया. दोनों उत्पाती

महाअसुर तब माया के वश हुऐ, विष्णु से कहने लगे, कि हम तुम्हारे शौर्य से बहुत प्रसन्न हैं, तुम वर मांगो. विष्णु ने कहा - यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे हाथ से मृत्यु को प्राप्त होइये. विष्णु के जाल में फंसे दोनो दैत्यों ने कहा कि आप हमें सूखी पृथ्वी पर मारिये. तब विष्णु ने उन्हें अपनी जंघा पर रख कर चक्र से उनका वध कर दिया.

इस कथा से तीन निष्कर्ष निकलते हैं - ब्रह्मा को त्रिगुणातीत परमात्मा शक्ति का ज्ञान, प्रकृति के तीनों गुणों के कार्य का ज्ञान, और मधु-कैटभ अर्थात सुकृत-दुष्कृत में निर्ममत्व तथा उसके निर्मूलन का प्रयत्न. गीता में भी श्री भगवान् ने ऐसा ही कहा है -

> जब विवेकी मनुष्य तीनों गुणों के अतिरिक्त किसी अन्य को कर्ता नहीं समझता है तथा गुणों से परे मुझ परमात्मा को तत्त्व से जान लेता है, उस समय वह मेरे स्वरूप अर्थात् सारूप्य मुक्ति को प्राप्त करता है. (गीता १४.१९ : ३.२७, ५.०९, १३.२९ भी देखें)
>
> वास्तव में संसार के सारे कार्य प्रकृति मां के गुणरूपी परमेश्वर की शक्ति के द्वारा ही किए जाते हैं, परन्तु अज्ञानवश मनुष्य अपने आपको ही कर्ता समझ लेता है (तथा कर्मफल की आसक्तिरूपी बन्धनों से बंध जाता है. मनुष्य तो परम शक्ति के हाथ की केवल एक कठपुतली मात्र है). (गीता ३.२७ : ५.०९, १३.२९, १४.१९ भी देखें)
>
> कर्मफल की आसक्ति त्यागकर कर्म करने वाला निष्काम कर्मयोगी इसी जीवन में पाप और पुण्य से मुक्त हो जाता है, इसलिए तुम निष्काम कर्मयोगी बनो. (फल की आसक्ति से असफलता का भय होता है, जिसके कारण कर्म अच्छी तरह नहीं हो पाता है.) निष्काम कर्मयोग को ही कुशलता पूर्वक कर्म करना कहते हैं. (गीता २.५०) (अर्थात बुद्धिमान मनुष्य सुकृत-दुष्कृतको छोड़ता है) दुर्गा-सप्तशती में भी मधु-कैटभ के नाश

का महात्मय सुनने का प्रथमफल दुष्कृत का नाश ही कहा गया है. वास्तव में सुकृत-दुष्कृत दोनों ही शान्ति-मार्ग में दुष्कृत रूप हैं दुर्गा-सप्तशती १२.२-५)

द्वितीय कथा

एक बार महिषासुर नाम का दैत्य अत्यधिक शक्तिशाली बन बैठा और उसने स्वर्ग से देवताओं को खदेड़ कर स्वर्ग पर अधिकार कर लिया. उस पर देवता एक दल बना कर ब्रह्मा के नेतृत्व में विष्णु और शिव से मिले. इस शिकायत पर दोनों देवताओं को महिषासुर पर बहुत क्रोध आया, और उनके तथा अन्य देवताओं के शरीर से एक-एक ज्योति निकली. इन ज्योतियों ने मिल कर देवी का रूप धारण किया. देवी की आभा ने सम्पूर्ण ब्रह्मांड को आलोकित कर दिया. (९ देवी के इस आश्चर्यजनक रूप का वर्णन अन्त में देखें)

तब सभी देवताओं ने देवी को एक-एक आयुध या अलंकार प्रदान किया. इस प्रकार सुसज्जित हो कर देवी ने घोर नाद शब्द किया, जिससे सम्पूर्ण ब्रह्मांड गुंजायमान हो उठा.

इस भयंकर नाद को सुनकर महिषासुर अपनी सेना ले कर नाद के स्त्रोत को ढूंढने चल पड़ा. देवी के पास पहुंच कर उसने देखा कि देवी असंख्य आयुधों से सुसज्जित हो कर चारों ओर अपनी भुजाऐं फैलाए खड़ी हैं. ("हे महात्मन्, स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का यह सम्पूर्ण आकाश तथा समस्त दिशाएं केवल आपसे ही व्याप्त हैं. आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक भयभीत हो रहे हैं" (गीता ११.२०) "तथा मैं आपको मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूं. इसलिए हे विराट्रूप, हे सहस्रबाहो, आप अपने चतुर्भुजरूप में प्रकट हों." (गीता ११.४६) दैत्यों ने तुरन्त देवी पर आक्रमण कर दिया और महाभयंकर प्रलयंकारी युद्ध आरम्भ हो गया. कथा में आगे युद्ध का रोचक वर्णन है और हमें विदित होता है, कि किस प्रकार देवी के प्रत्येक श्वास से भली-भांति सुसज्जित लड़ाकू पैदा हो कर दैत्य सेना का विनाश करने लगे.

जब महिषासुर ने अपनी सेना का इस प्रकार विनाश होते देखा तो क्रोधित हो कर भैंसे का उग्र रूप धारण किया (इस रुप के कारण ही उसका नाम महिषासुर पडा) और देवी की ओर भयंकर तेजी से दौड़ा. देवी ने जैसे ही उसे अपनी ओर आते देखा, उन्होंने अपना पाश उसके गले में फेंक कर उसे बाँध दिया. तब महिषासुर ने एक के बाद एक कई रूप धारण किये. अन्त में जैसे ही वह फिर से भैंसे का रूप धारण कर रहा था, देवी ने अपने पाश से जकड़ कर उसका वध कर दिया. बचे-खुचे दैत्य पाताल आदि निचले लोकों में भाग गये. देवतागण बहुत हर्षित हुऐ और देवी की स्तुति की (१० स्तुति अन्त में देखें). देवी ने संतुष्ट हो कर देवताओं से वर मांगने को कहा. देवतागण बोले, हे देवि, आपने महिषासुर को मार कर हम पर बहुत उपकार किया है. फिर भी यदि आप प्रसन्न हैं तो आप यह वर दें कि हर विपत्ति के समय आप हमें अभय प्रदान करेंगी. देवी ऐसा ही वरदान दे कर अर्न्तध्यान हो गईं. उस प्रकार दूसरे भाग की कथा यहाँ समाप्त होती है.

इस कथा में पाँच बाते हैं - १ देवासुर संग्राम (प्रकृतिज गुणत्रय का प्रभाव - देखिए गीता १८.४० पृथ्वी पर अथवा स्वर्ग के देवताओं में कोई भी प्राणी प्रकृति के इन तीन गुणों से मुक्त होकर नहीं रह सकता है., २ देवताओं की पराजय (सत्त्वगुण और रजोगुण को तमोगुण द्वारा दबा लेना, देखिए गीता ७.१३ "प्रकृति के इन तीनों गुणों के कार्यों से यह सारा संसार भ्रमित रहता है, अतः मनुष्य इन गुणों से परे मुझ अविनाशी परमात्मा को नहीं जानता है" और १४.१० "हे अर्जुन, कभी रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सतोगुण, कभी सतोगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण तथा कभी सतोगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है."), ३ हरि की शक्ति का आश्रय लेना (देखिए गीता ७.२८ "निष्काम भाव से अच्छे कर्म करने वाले जिन मनुष्यों के सारे पाप नष्ट हो गये हैं, वे राग-द्वेष जनित भ्रम से मुक्त होकर दृढ़निश्चय कर मेरी भक्ति करते हैं." ४ देवताओं के तेज का एकत्त्व और उस एकत्रित तेज से असुरों का पराजित होना. महिष काम या इच्छा को भी कहते हैं. यही इच्छा यदि परमात्मामें लगी रहे तो कल्याणदायिनि होती है और भोगादि में लगी रहे तो विघ्नस्वरूपा है, ५ देवताओं की स्तुति और वर प्राप्ति. देवताओं की स्तुति से यह स्पष्ट है कि देववृन्द दोषवश यानी काम, क्रोध, राग, द्वेषादि के वशीभूत

होकर उस आद्य-शक्ति को भूल गए थे. गीता में भी भगवान् कहते हैं - हे अर्जुन, राग और द्वेष से उत्पन्न (सुख-दुःखादि) द्वन्द्व द्वारा भ्रमित सभी प्राणी अत्यन्त अज्ञता को प्राप्त होते हैं; परन्तु निष्काम भाव से अच्छे कर्म करने वाले जिन मनुष्यों के सारे पाप नष्ट हो गये हैं, वे राग-द्वेष जनित भ्रम से मुक्त होकर दृढ़निश्चय कर मेरी भक्ति करते हैं. (७.२७-२८)

तृतीय-कथा

इस भाग की कथा सबसे लम्बी और अलंकार तथा लक्षण-विद्या के अनुसार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है. इस भाग में देवी दो दैत्यों, शुम्भ और निशुम्भ के विनाश के लिऐ प्रकट होती हैं. ये दोनों दैत्य अत्यधिक शक्तिशाली व उत्पाती थे. स्वर्ग से देवताओं को भगा कर ये मनमानी करते थे. देवताओं ने देवी के पूर्व वरदान को याद करके देवी का आवाहन् किया. देवी पार्वती के रूप में प्रकट हुईं और अपने आवाहन् का उद्देश्य जान कर दैत्यों पर बहुत क्रोधित हुईं. तुरन्त उनके एक अशं से अम्बिका का प्राकट्य हुआ. खुद देवी ने पूर्णतया काला और वीभत्स, कालिका देवी का रूप धारण किया.

अम्बिका को दो दैत्यों, चण्ड और मुण्ड, ने देखा. वे तुरन्त शुम्भ के पास गऐ और अम्बिका देवी के अद्वितीय रूप का वर्णन किया. इस पर शुम्भ ने सुग्रीव नामक अपने व्यक्तिगत चाकर से कहा कि वह तुरन्त अम्बिका के पास जा कर युक्तिपूर्वक उसे शुम्भ की रानी बनने को मनाऐ. सुग्रीव को अम्बिका ने कहा - "मैं प्रतिज्ञा-बद्ध हूं कि उसी के साथ विवाह करूँगी जो मुझे युद्ध में हरा दे." शुम्भ यह सुन कर अत्यन्त क्रोधित हुआ, और उसने धूम्रलोचन को यह आदेश दिया कि वह सेनासहित जा कर अम्बिका को बलपूर्वक हर लाऐ. धूम्रलोचन को देवी ने मात्र एक हुँकार से मार डाला. तदनन्तर एक और बड़ी सेना चण्ड और मुण्ड के आधीन भेजी गई. अम्बिका ने अत्यन्त क्षुब्ध हो कर अपने ललाट से महा विकराल-मुखी काली देवी को प्रकट किया. जिव्हा लपलपाती काली ने क्षण भर में चण्ड और मुण्ड की सेना का विनाश करके, "हं" शब्द का उच्चारण करके चण्ड और मुण्ड को

तलवार से मार गिराया. अम्बिका ने इस पर प्रसन्न हो कर काली को "चामुण्डा" नाम से पुकारा.

अब महाशक्तिशाली शुम्भ युद्ध के लिऐ प्रस्तुत हुआ. इस पर भयंकर कोलाहल हुआ और सभी देवताओं की शक्तियाँ मूर्त्त रूप ले कर युद्ध में भाग लेने को आ खड़ी हुईं. ब्रह्मा की ब्रह्माणी शक्ति, महादेव की माहेश्वरी आक्ति, कार्त्तिकेय की शक्तिरूपा जगदम्बिका शक्ति, भगवान् श्री विष्णु की वैष्णवी शक्ति, श्री हरि की वाराही शक्ति, भगवान् नृसिंह की नारसिंही सक्ति, इन्द्र की ऐन्द्री शक्ति, आदि शक्तियाँ युद्ध में भाग लेने आ पहुंची. तब महादेव जी ने देवी चण्डिका से असुरों के विनाश के लिऐ प्रार्थना की. देवी ने दैत्यों को अन्तिम अवसर देने के लिऐ, शिव जी को दैत्यों के पास भेजा (और इस प्रकार शिव को दूत के रूप में भेजने के कारण शिवदूती कहलाईं).

दैत्यों ने आक्रमण कर दिया, और सबसे पहले काली और चण्डिका ने मिल कर रक्तबीज का वध कर दिया. (संग से काम की उत्पत्ति होती है, अतः जब रक्तबीज का रक्त-बिन्दु भूमिपर गिरता था तो अनेक रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे. इसका यही आध्यात्मिक रहस्य्य है. देखिए गीता २.६२ विषयों का चिन्तन करने से विषयों में आसक्ति होती है, आसक्ति से (विषयों के सेवन करने की) इच्छा उत्पन्न होती है और इच्छा (पूरी नहीं होने) से क्रोध होता है.) तत्पश्चात् निशुम्भ मारा गया. चण्डिका ने शुम्भ को भयंकर आघात पहुंचाया. होश में आने पर शुम्भ बोला - "हे दुष्ट दुर्गे, तू बड़ी मानिनि है, परन्तु मुझ अकेले पर तू दूसरी स्त्रियों के साथ मिल कर आघात करती है". तब देवी बोलीं, "मैं तो अकेली ही हूँ, (११ देखें) और देख, ये मेरी सब विभूतियाँ मेरे अन्दर प्रवेश कर रही हैं. मैं अब तुझसे अकेले ही युद्ध करूंगी." देखिए गीता - हे अर्जुन, मेरी दिव्य विभूतियों का तो अन्त ही नहीं है. मैंने तुम्हें अपनी विभूतियों के विस्तार का वर्णन संक्षेप में कहा है. (१०.४०) जो भी विभूतियुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उसे तुम मेरे तेज के एक अंश से ही उत्पन्न हुई समझो. (१०.४१) ऐसा कहते ही सब देवताओं द्वारा भेजी गई शक्तियाँ, जो युद्ध में भाग लेने प्रस्तुत हुई थीं, अदृश्य हो गईं और देवी अकेली रह गईं. फिर देवी और शुम्भ के बीच घमासान युद्ध

हुआ जिसमें सभी प्रकार के दिव्य आयुध प्रयुक्त हुऐ. अन्त में आयुध भी छोड़ कर केवल बाहुयुद्ध हुआ. शुम्भ आकाश में उड़ गया परन्तु अन्त में देवी ने उसका वध कर दिया. जब दैत्यों का विनाश हो गया, तब देवताओं ने अत्यन्त मधुर स्तुतियाँ देवी के यश में गाईं. यह स्तुतियाँ दैवी शक्तियों के दार्शनिक व धार्मिक स्वरूपों को उजागर करती हैं व भक्तों के हृदयों को अतीव आनन्द से सराबोर कर देती हैं. देवतागण भी अपने निजि स्वार्थों से ऊपर उठ कर सर्वांगीण हितों के बारे में सोचते दिखाई देते हैं. देवतागणों के इस प्रकार स्तुति करने के बाद देवी फिर प्रकट होने का आश्वासन दे कर अदृश्य हो जाती हैं.

इस प्रकार मेधा ऋषि द्वारा राजा सुरथ व समाधि वैश्य को सुनाई गई कथा समाप्त होती है. मेधा ऋषि राजा सुरथ व समाधि वैश्य को सम्मति देते हैं कि उन्हें अपने दुःखों के निवारण के लिऐ देवी की शरण में जाना चाहिऐ. दोनों ने निश्चय किया कि देवी की अर्चना-पूजा व तपस्या करनी चाहिऐ ताकि देवी दर्शन पाऐ जा सकें. साधना पूरी होने पर देवी ने उन्हे दर्शन दिऐ. राजा ने अपना खोया राज्य वापिस पाया और समाधि वैश्य ने मोक्ष की कामना की. देवी ने उनकी कामनाऐं पूरी की और अदृश्य हो गईं. देवी ने देवताओं को यह यह वर भी प्रदान किया कि जब-जब संसार में दानवी बाधा उपस्थित होगी तब-तब अवतार ले कर मैं शत्रुओं का संहार करूंगी. (दुर्गा सप्तशती अध्याय ११.५४-५५. और देखिए "हे अर्जुन, जब-जब संसार में धर्मकी हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब अच्छे लोगों की रक्षा, दुष्टों का संहार तथा धर्म संस्थापना के लिए मैं, परब्रह्म परमात्मा, हर युग में अवतरित होता हूं. (गीता ४.०७-०८)"

यहाँ पर दुर्गा सप्तशती की गाथा भी समाप्त होती है. इस गाथा को पढ़ कर कोई भी यह निष्कर्ष निकाल सकता है, कि इसमें जरूर कुछ अलंकार व संकेत विद्यमान हैं, अन्यथा यह एक निराधार व निरर्थक पौराणिक कथा मात्र रह जाऐगी. परन्तु इस कथा के अन्दरूनी अर्थों को समझना आसान नहीं है, और इसकी शिक्षाओं को सत्य से जोड़ना, जोकि इस कथा का मूल उद्देश्य है, तो और भी कठिन है.

कथा का प्रथम भाग निश्चय ही इसी तथ्य व प्रसंग की ओर इशारा करता है. ब्रह्मा, जोकि देवात्मा का प्रतीक हैं और प्रकृति में उच्च मनस् के रूप में हैं, विष्णु की आराधना करते हैं कि वे इन दोनों शत्रुओं, मधु और कैटभ, इन्द्रिय-सुख और सत्ता की कामना, से उनकी रक्षा करें. निश्चय ही विष्णु का नींद से जागना ही, जीवात्मा में विवेक की शक्ति का जागना है. जब बुद्धि और विवेक की चोट मनस् पर पड़ती है, तब ही जीवात्मा गहरे अज्ञान रूपी अन्धेरे से जाग जाता है और जिस अज्ञान, अविवेक और भ्रम में वह पड़ा है, उसे पहचान कर वह, आंशिक रूप से ही, आम इन्सानी जिन्दगी के बन्धनों को काट कर आध्यात्म के क्षेत्र में कदम रखता है. इस प्रकार जीवात्मा के विकास के क्रम का सफर शुरू हो जाता है और वह आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर चल पड़ता है.

मधु-कैटभ की कथा में सबसे मनोरंजक भाग वह है, जब वे दोनों विष्णु से कहते हैं, कि वरदान मांगो, और इस प्रकार अपना क्षय खुद कर बैठते हैं. मनुष्य का निम्न मन खुद ही तो विवेक के द्वारा उच्च स्तर की आध्यात्मिक शक्तियों की चाह में और सूक्ष्मतर मानसिक सुख ढूंढ़ता हुआ अपना गला खुद ही काट देता है. यह आम तौर पर देखा गया है कि आध्यात्म के क्षेत्र में सीधा प्रवेश नहीं होता. मनुष्य अधिकतर कट्टर धार्मिकतावादी लोगों से घिरे आम लोगों पर अपना प्रभाव जमाने के लिऐ ही, सूक्ष्मतर लोकों की खोज में या रहस्मयी शक्तियों को पाने की चाह में ही इस जगत् में प्रवेश करना चाहते हैं. (मानव-प्रकृति के दो स्तर हैं. नीचे की तह में उसमें उसके स्थूल शरीर की वासनाएँ और विकार रहते है और ऊपरी तह में उसके दिव्य पुण्य-गुण. आसुरी व तामसिक वृत्तियों पर जय प्राप्त करने के उपरान्त सात्विक, बौद्धिक अथवा उच्च वृत्तियों से परिचय हो जाता है, और उसकी उदात्त शक्तियों का विकास होने लगता है. तब वह ईश्वर के साथ तादात्मय स्थापित करने योग्य हो जाता है) उच्च लोकों के विषय में और जानकारी प्राप्त करने की इच्छा, और उस अनुभव से लाभ उठाने की कामना ही वृत्तियों पर नियन्त्रण करने और विवेकशील तथा पवित्र भाव धारण करने को प्रेरित करती है. जब सही मायने में विवेक जाग्रत हो जाता है, तब वह इन्द्रिय-सुख पाने की कामना को और ना केवल

निचले लोकों में, बल्कि उच्च लोकों में भी प्रभुत्व पाने की लालसा को भी दूर कर देता है. सत्य जानने की इच्छा और सब इच्छाओं को दबा देती है. हम पाते हैं कि वासना और कामना-पूर्ति स्वयं अपने आप को खत्म कर के मधु-कैटभ की कथा को चरितार्थ करती है.

विवेक के जाग्रत होने व इसका कुछ विकास होने के बाद जीवात्मा के विकास में पहली रूकावटों के रूप में मन की पाशविक प्रवृत्तियाँ और निम्न मन की अप्रिय कामनाएँ सामने आती हैं. ऐसा इसलिऐ होता है, कि विवेक अच्छे-बुरे की पहचान तो करा सकता है, परन्तु नियन्त्रण नहीं कर सकता. अतः जब जिज्ञासु जीवात्मा यह महसूस करने लगती है, कि अब उसे अपना विकास करना है, तब सुषुप्त अधूरी कामनाएँ भी जाग उठती हैं और निम्न और उच्च प्रवृत्तियों के बीच युद्ध छिड़ जाता है. अनेक पात्रों व व्यक्तित्वों के बीच का युद्ध है यह और जीवात्मा को विभिन्न स्तरों पर यह युद्ध लड़ना पड़ता है. अनेक मोर्चों पर चल रहा यह युद्ध शुरू में तो साधारण मानसिक बल पर लड़ा जा सकता है, और मनस् की दबी हुई सात्त्विक शक्तियों के आवाहन् की आवश्यकता नहीं होती. अन्त में दबी हुई शक्तियों के बल पर ही यह युद्ध जीता जाता है. सच्ची आत्मनिर्भरता निम्न स्तर की शक्तियों पर निर्भरता नहीं होती, परन्तु दैवी शक्तियों व अन्तरात्मा में बसी देवात्मा का सच्चा और कभी ना समाप्त होने वाला स्त्रोत है. अधम और उच्च, निर्मल वृत्तियों का यह युद्ध कभी कभी लम्बा चलता है, परन्तु धीरता से और दैवी शक्तियों पर पूर्ण श्रद्धा से अन्ततः जीवात्मा विजयी होता है. निम्न वृत्तियों का निरोध होता है और वह फिर जीवात्मा पर हावी नहीं हो पातीं. धीमे-धीमे और भी तामसिक प्रवृत्तियों का हनन होता जाता है, और जीवात्मा के सूक्ष्म शरीर, मनोमय-कोष, सूक्ष्म-बुद्धि, ज्ञान आदि का यथोचित उत्कर्ष होता जाता है. सांसारिक सुखों की चिन्ता, विषय-वासनाओं की पूर्ति आदि में संलग्न मनुष्य की कुण्डलिनि शक्ति, जोकि मनुष्य के भीतर रहने वाले जीवात्मा का नारी रूप है, अनेक जन्मों तक सोई रहती है. इस प्रकार अनेकानेक जन्मों तक सुख व दुःख का अनुभव करते करते मनुष्य को आखिरकार इनकी निरर्थकता महसूस होती है, और यह

ज्ञान होता है कि इस शरीर के पार भी कोई महती वस्तु-पदार्थ है, जो पाने के योग्य है, और जो हमारा अन्तिम ध्येय है. उसे महसूस होता है कि शाश्वत शक्ति तो उसके स्वयं के भीतर है, जिसे वह जब चाहे प्राप्त कर सकता है. (शास्त्रों में पाँच कोषों का उल्लेख है - अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्द मय कोष. व्यष्टिरूप में जीव इन कोषों में क्रमशः पहुँचता है. उसका स्थूल-देह अन्नमयकोष है, आत्मा का अन्नमय कोष है यह विराट् ब्रह्मांड. उसका प्राणमय कोष है सृष्टि-स्थिति-क्रिया शक्ति. उसका मनोमय कोष है नाना भाव में व्यक्त होने का संकल्प. विज्ञानमय कोष है वह ज्ञान जो बहुत्व के संकल्प को धारण कर रहा है. उसका आनन्द मय कोष निरा आनन्द मय है. यही जगत् का बीज अव्यक्तरूप में रहता है. विराट् विज्ञानमयकोष ही स्वर्गलोक है. यदि जीव व्यष्टि-विज्ञानमय कोष में अवस्थान कर सके तो वह अनायास ही स्वर्गलोक को प्राप्त कर सकता है. श्री चण्डी तत्त्व इस विज्ञानमय कोष की सधना है. गीता के अध्याय १४ और इस लेख के अन्त में दिए देवी सूक्त ७ को भी देखें)

कुण्डलिनि शक्ति के जाग्रत होने पर वह भीतर की दिव्य चेतना को निम्न श्रेणी से ऊपर की ओर ले जाती है, और मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्रों से निकाल कर, ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र, इन तीन ग्रन्थियों को छिन्न-भिन्न करके सहस्त्रधार चक्र पर पहुँचा देती है. जीवात्मा इस स्थिति को पहुँच कर परम् शाश्वत शान्ति, दिव्य-ज्ञान, सत्-चित्त-आनन्द को प्राप्त कर लेता है. असुरों पर देवताओं की विजय हो जाती है.

कथा के दूसरे भाग में महिषासुर की कहानी हमारी आध्यत्मिक प्रगति के स्वरूप को प्रतीक के रूप में दर्शाते हैं. आइए देखें -

पहले तो देवता, ब्रह्मा के नेतृत्व में विष्णु और शिव के पास जाते हैं और प्रार्थना करते हैं कि उन्हे महिषासुर के अत्याचारों से बचाया जाए. इससे यह ज्ञात होता है कि जीवात्मा अभी एक नव-साधक है और ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ ही है, परन्तु उसकी आध्यात्मिक शक्तियाँ अभी जाग्रत नहीं हुई हैं. उसका आध्यात्मिक क्षेत्र से अभी सीधा सम्बन्ध नहीं हुआ है और वह अभी उच्च मन के निर्देशन में अपनी शक्तियों को जाग्रत करने के प्रयत्न में रत है. उच्च मन इस सच्ची पुकार का उत्तर तो अवश्य देता है और आध्यात्मिक चेतना का निश्चित, क्रमबद्ध शनैः शनैः विकास व इस विकास से मिलने वाली शक्तियों का अभ्युदय प्रारम्भ हो जाता है. परमात्मा और

योग की महान् शक्ति के यह विभिन्न प्रकार के रूप इस अवस्था में आवश्यक होते हैं ताकि साधक उनका अपनी रक्षार्थ उपयोग कर सके. अभी साधक का इतना विकास नहीं हुआ होता कि वह विशुद्ध शक्ति पुंज को धारण कर सके अतः वह इस विशाल व अतीव वेगवान शक्ति स्त्रोत की विभिन्न धाराओं को ग्रहण करता चलता है. महिषासुर के विरोध में इन्हीं विभिन्न प्रकार की शक्तियों का संग्रह देवता गण करते हैं.

महिषासुर ने भी देवी के हाथों वध से पहले विभिन्न रूप धारण किये. वह भैंसा, सिंह, और हाथी बना. यह मनुष्य की विभिन्न पाशविक प्रवित्तियाँ हैं. पशु के शरीर ने अन्ततः मानवाकृति धारण की, जो यह दर्शाता है कि निम्न मन का विकास प्रारम्भ हो चुका है.

कथा के अन्त में देवी देवताओं को वर देती हैं कि वे जब भी याद करेंगे, वे प्रकट हो जाऐंगी. यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है और इस बात का द्योतक है, कि साधक जीवात्मा के निम्नमन की वृत्तियों (महिषासुर) का दमन हो चुका है और वह इतनी प्रगति कर चुका है, कि वह देवात्मा से सहायता की सीधी याचना कर सके और शक्ति स्त्रोत से सीधी शक्ति अर्जित कर के धारण कर ले. वह शक्ति धारण करने की योग्यता अर्जित कर चुका है.

पहले कही दोनों अवस्थाऐं जीवात्मा का देवात्मा से सीधा सम्पर्क बनाने के लिऐ तैयार की जा रही भूमिकाऐं मात्र थीं. सो जीवात्मा का असली विकास कथा के तीसरे (शुम्भ-निशुम्भ वध वाले) भाग से आरम्भ होता है.

तीसरे भाग में दैत्यों के वध के लिए देवता देवी से सीधे सहायता की याचना करते हैं. शुम्भ ने देवी से अपनी पत्नी बनने के लिऐ प्रार्थना की. जब एक योगी उच्च अवस्था प्राप्त करता है, तब ऐसी ही अवस्था सामने आती है. उसकी कोई अधूरी, अतृप्त पड़ी इच्छा अब पूरी हो सकती है. (१२ देखें) अपनी अर्जित की गई शक्ति का उपयोग वह चाहे तो अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति के लिए कर सकता है, या फिर यश की प्राप्ति के लिए. यह बहुत सूक्ष्म प्रकार का अहं है, जिसे कथा में शुम्भ के रूप में दिखाया गया है. देवी की घोषणा है कि वही मुझे प्राप्त कर सकता है जो इस प्रबल

आकर्षण को जीत ले. या तो योगी का अहम् उसे इस प्रबल आकर्षण में बाधँ देता है, या विवेक द्वारा वह इस आकर्षण को जीत कर देवी को प्राप्त होता है. परन्तु इसमें देवी भी उसकी सहायता करती हैं.

परन्तु शुम्भ (अहंकार) ही योगी का एकमात्र दुश्मन नहीं है. अभी तो इन आकर्षणों की पूरी सेना है. उनमें प्रमुख हैं, धूम्रलोचन, रक्तबीज, और चण्ड-मुण्ड. हमने देखा है कि किस प्रकार देवी ने शुम्भ(अहंकार) निशुम्भ(ममत्व), रक्तबीज (काम), धूम्रलोचन (क्रोध), चण्ड (बल), मुण्ड (दर्प) और सुग्रीव (परिग्रह) को पराजित किया. सुग्रीव को दैत्यों ने देवी को बल-दर्प पूर्वक पकड़ लाने को भेजा था. अहं और मम दोनों एक ही 'अस्मत्' शब्द से उत्पन्न हैं और शुम्भ-निशुम्भ की तरह भाई-भाई है. दुर्गा सप्तशती में अध्याय ५ में श्लोक १०८ से ११४ तक शुम्भ के लिए मम और अहं शब्दों का अनेक बार प्रयोग हुआ है.

इस भाग में और भी रोचक तथ्य हैं. देवी ने दो ध्वनियों, "हुँ" और "हं" द्वारा दैत्यों का वध किया. आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति के लिए मंत्रों का उपयोग सर्वविदित है. यह बीज मंत्र एक सीमा तक उन्नति कर चुके साधकों द्वारा ही उपयोग में लिए जा सकते हैं. इन मंत्रों का उपयोग तभी अन्तिम भाग में किया गया है.

और देखें. रक्तबीज के वध तक सभी दैवी शक्तियाँ अलग-अलग दृष्टि-गोचर हो रही हैं, और साधक योगी इतना सक्षम हो चुका है कि इन शक्तियों का अलग-अलग या एक साथ उपयोग कर सके. योगी के इतनी उन्नति कर लेने के बाद ही उसे साधना-चतुष्टय का अभ्यास कराया जाता है.

देवी शुम्भ को वापिस लौटने का अवसर भी देती हैं. इसका यह आशय है कि इस अवस्था को प्राप्त कर लेने के बाद साधक योगी को जीवन-मुक्त होने का अन्तिम अवसर दिया जाता है. या तो वह पुर्नजन्म आदि के फेर में वापिस चला जाए या फिर देवात्मा में मिल कर सम्पूर्ण का अंग बन जाए. वह अपना अस्तित्व बनाए रख सकता है और सिद्धियों को

भोग सकता है. परन्तु यदि उसे निर्वाण प्राप्त करना है तो उसे अपना अस्तित्व मिटा देना होगा. कोई बीच का मार्ग नहीं है.

आप जान चुके हैं कि शुम्भ से निर्णायक युद्ध के पहले देवी ने अपनी समस्त विभूतियों व शक्तियों को एकत्र कर लिया. यह जान लें कि यही निर्णायक क्षण है. आध्यात्मिक क्षेत्र का सर्वोच्च शिखर साधक ने छू लिया है. आकाशगामी शुम्भ आकाश में उड़ चुका है और उसका देवी से युद्ध आरम्भ हो चुका है. आकाश पाँचों तत्त्वों में सबसे सूक्ष्म है. इसी में विश्व का प्रार्दुभाव होता है. योगी साधक का अहं छिन्न भिन्न करके नष्ट करना है, जिसके लिए आकाश से बेहतर और कोई स्थान नहीं है.

हम यह भी देखें कि राजा और वैश्य को दिए गऐ वरदानों में बहुत अन्तर था. यह वास्तव में ज्ञान या ध्येय को पाने के दो रास्ते हैं. ज्ञान पाने के बाद राजा जगत् में वापिस लौट कर अपनी प्रजा व अज्ञानी साधारण जनता को ज्ञान देता है. दूसरा रास्ता मनुष्य को स्वयं का ध्येय दिलवा देता है.

हम जानते हैं कि वेदों, उपनिषदों व पुराणादि में विश्व में प्राप्य उच्चतम कोटि के आध्यात्मिक तथ्यों का खजाना है. उच्चतम रहस्यों को कहानी आदि में गूँथने से ही यह सर्व ग्राह्य हो सके हैं और इनकी रक्षा भी सम्भव हो सकी है. कोई एक ही इन कथाओं में निहित अलंकारों व संकेतों को समझने का प्रयत्न करता है, अधिकतर जनमानस तो इन कथाओं के सौन्दर्य में अभिभूत हो कर इन्हें युगों तक संजो कर रखता है.

दुर्गा सप्तशती में साधक के लिए ही नहीं, परन्तु समाज के लिए भी संदेश हैं. देवी के अनेक युद्धों से हम बहुत शिक्षा ले सकते हैं. देवी की असँख्य शक्तियों का पारावार नहीं है. देवी की सेना में असँख्य प्रकार की शक्तियाँ हैं, और वे संसार की प्रत्येक नारी में समान रूप से विद्यमान हैं. हे भारत की नारियों, अपनी सुप्त शक्तियों को जगाइये और इस देश में फैले भ्रष्टाचार, अनाचार व कुविचारों को अपने पाश में जकड़ कर नष्ट कर दीजिए. दुर्गा सप्तशती के अध्याय ११ के श्लोक ६ में कहा गया है "विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगस्तु । त्वयैकया

पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुति स्तव्यपरा परोक्तिः ॥" अर्थात "देवि सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही विभिन्न स्वरूप हैं. जगत् में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं. जगदम्ब एकमात्र तुमने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है. तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है. तुम तो स्तवन करने योग्य पदार्थों से परा एवं परा वाणी हो."

यदि हम स्त्रियों का आदर करना सीख लें तो हमारा समाज अत्यन्त समृद्ध हो जाऐगा और हम सुखी हो सकेंगे. दुर्गा ने रक्तबीज का वध बिना एक बूंद गिराए किया था. उससे यह जानना चाहिए कि नारी शक्ति दुश्मन का समूल विनाश करने में सक्षम है और अत्यन्त बलशाली और दिव्य शक्तियों की स्वामिनी है. साथ ही वह दया का सागर भी है, तभी वह पुरूष-प्रधान समाज में अत्यंत कष्ट सह कर भी पुरूष को प्रत्युत्तर नहीं देतीं. कथा से हमें ज्ञात होता है कि हर नारी अत्यन्त साहसी, विदुषी, और योजनाबद्ध कार्य करने वाली है. देवी उसे ही असुर मानती हैं जो नारी का सम्मान नहीं करते, उसे अशिक्षित रखते हैं, और उनका शोषण करते हैं. हमें प्रत्येक नारी का हर स्थिति में आदर सम्मान करना चाहिए. देवी की भांति वह हमें अपने विशाल रक्षक व पोषण करने वाले दिव्य वक्ष में समाने को हमेशा उत्सुक है, और हमारी भूलों व पापों को क्षमा करने को सदा प्रस्तुत है. वह माँ बनकर हमारा लालन-पालन करती है, पत्नी बन कर हमारे उद्देश्यों की पूर्ती में सहायक होती है, बेटी बनकर हमें सुख पहुँचाती है, और बहन बनकर हमारी ढ़ाल बन जाती है. वह सदा हमारे व हमारे परिवार के सुख की कामना करती है. और हम इतने स्वार्थी हैं कि जो नारी हमारे वंश को आगे चलाने में मुख्य भूमिका निभाती है, और अपना घर-बार त्याग कर आ जाती है, हम उसी की अवहेलना व निरादर करते हैं. महामाया हमारी भूलों को क्षमा करे व हम पर अपनी कृपा बनाए रखें.

राष्ट्रों के लिए महान् भी संदेश है. दोस्तों के लिए फूल जैसे कोमल और दुश्मनों के लिए महाकाल से भी भयंकर. "महाकाली रक्तबीज के रक्त से उत्पन्न दैत्यों का भक्षण करती हुई रण में विचरती रहीं" (सप्तशती

८.५५) हर देश को चाहिए कि वह अपने दुश्मनों का इसी प्रकार समूल नाश कर दे. दुष्टों का इसी प्रकार दलन अपेक्षित है.

टिप्पणियाँ

१ दुर्गा - भगवान् शिव की पत्नी पार्वती जी के हजार नामों में से एक नाम दुर्गा है.

२ जगद्माता - ललिता-सहस्त्रनाम-स्तोत्र देखें, सौभाग्य भास्कर भाष्य, श्लोक १७ "पुरूषम् वा स्त्रेद्ध देवि स्त्री रूपम वा विचिन्त्येत, अथवा निष्कलाम् ध्यायेत् सत्त, चित्त, आनन्द लक्ष्णम्" इसका अर्थ है कि देवी का पूजन पुरूष रूप या स्त्री रूप में या केवल सत्त चित्त आनन्द रूप में भी किया जा सकता है. हमें पिता का प्यार पाने के लिए पुरूष रूप और माता का प्यार पाने के लिए स्त्री रूप में ईश्वर की आराधना करनी चाहिए. चिदागगनाचार्य ने कहा है - देवि, आप ना पुरूष है, ना स्त्री और ना क्लीब ही हो. आपके पति भी इन विषेशणों से मुक्त हैं. आपकी कृपा-दृष्टि के बिना ना तो हम आपके विषय में सोच सकते हैं और ना आपका आराधन कर सकते हैं.

३ ब्रह्म-ज्ञानियों के द्वारा सदा ही शक्ति को नारी रूप में चित्रित करने में आपत्ति रही है, क्योंकि वह ईश्वर के पुरूष रूप के प्रति ही आश्वस्त हैं. देवी भागवत पुराण में देवी कहती हैं - वह पुरूष और मैं स्वयं एक ही हैं. हे अजा, सृष्टि की रचना हेतू ही यह भेद उत्पन्न होता है. प्रलय के समय मैं ना तो पुरूष, ना स्त्री और ना क्लीब होती हूँ. (Kalyan Kalptaru, Siva Number, Vol. XXXVI, No. 1, October 1990, p. 318, "Two forms of Sakti – Tripura Sundari and Kali)

४ ऋग्वेद में भी असुरों के साथ युद्ध का विवरण प्राप्त होता है. देवी के असुरों के साथ युद्ध का विवरण हमें सौर पुराण में भी मिलता है. इस पुराण में शिव ने रक्ताक्ष व धूम्राक्ष का वध किया.

५ "हे अर्जुन, जब-जब संसार में धर्मकी हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब अच्छे लोगों की रक्षा, दुष्टों का संहार तथा धर्म संस्थापना के लिए मैं, परब्रह्म परमात्मा, हर युग में अवतरित होता हूं". (गीता ४.०७-०८)"

६-७ वैदिक काल में वर्ष के प्रथम मास को मधु कहा जाता था. एक और मास का नाम माधव भी था. यह दोनों मास वसन्त के थे. मधु-कैटभ की कथा देवी भागवत् में भी मिलती है. देखिए भाग १, अध्याय ६ से ९ तक. मतस्य-पुराण (१७०.२) और कलिका-पुराण (अध्याय ६१) में दो दैत्यों, मधु और कैटभ को रजो व तमो गुण भी कहा गया है. ब्रह्मांड की रचना तभी होती है, जब रजो गुण और तमो गुण सतो गुण पर अपना प्रभाव डालते हैं. ऋग्वेद में तथा अन्यत्र मधु को सूर्य और कैटभ को चन्द्र भी कहा गया है. सृष्टि की रचना के समय सूर्य और चन्द्र की गति और पथ निश्चित करना ही शायद मधु-कैटभ की कहानी का अभिप्राय है.

८ ब्रह्मा जी ने कहा - देवि, तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वषट्कार हो. स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं. तुम्हीं जीवनदायिनी सुधा हो. नित्य अक्षर प्रणव में अकार, उकार, मकार इन तीन मात्राओं के रूप में तुम्हीं स्थित हो तथा इन तीन मात्राओं के अतिरिक्त जो विन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका विशेष रूप से उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो. देवि, तुम्हीं संध्या, सावित्रि, तथा परम् जननी हो. देवि तुम्हीं इस विश्व-ब्रह्मांड को धारण करती हो. तुमसे ही इस जगत् की सृष्टि होती है. तुम्ही से इसका पालन होता है और सदा तुम्हीं कल्प के अन्त में सबको अपना ग्रास बना लेती हो. जगन्मयी देवि इस जगत् की उत्पत्ति के समुय तुम सृष्टि रूपा हो, पालन-काल में स्थितिरूपा हो और कल्पान्त के समय संहाररूप धारण करनेवाली हो. तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहरूपा, महादेवी और महासुरी हो. तुम्हीं तीनों गुणों को उत्पन्न करनेवाली सबकी प्रकृति हो. भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और माहेरात्रि भी तुम्हीं हो. तुम्हीं श्री, तुम्हीं ह्रीं और तुम्हीं बोधस्वरूपा बुद्धि हो. लज्जा,

पुष्टि, तुष्टि, शान्ति, और क्षमा भी तुम्हीं हो. तुम खड्गधारिणि, शूलधारिणि, घोररूपा तथा गदा, चक्र, शंख और धनुष धारण करने वाली हो. बाण, भुशुण्डी और परिघ - ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं. तुम सौम्य और सौम्यतर हो - इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो. पर और अपर - सबसे परे रहने वाली परमेश्वरी तुम्हीं हो. सर्वस्वरूपे देवि, कहीं भी सत्-असत् रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं और उन सबकी जो शक्ति है, वह तुम्हीं हो. ऐसी अवस्था में तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है. जो इस जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन भगवान् को भी जब तुमने निद्रा के आधीन कर दिया है, तब तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है. मुझको, भगवान् शंकर को तथा भगवान् विष्णु को भी तुमने ही शरीर धारण कराया है, अतः तुम्हारी स्तुति करने की शक्ति किसमें है. देवि तुम तो अपने इन उदार प्रभावों से ही प्रशंसित हो. ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मधु और कैटभ हैं, इनको मोह में डाल दो और जगदीश्वर भगवान् विष्णु को शीघ्र ही जगा दो. साथ ही इनके भीतर इन दोनो महान् असुरों को मार डालने की बुद्धि उत्पन्न कर दो. (दुर्गा सप्तशती १.७३-८७)

९ चक्रपाणि विष्णु के मुख से एक महान् तेज निकला. इसी प्रकार ब्रह्मा, शंकर त्था इन्द्र आदि अन्यान्य देवताओं के शरीर से भी बड़ा भारी तेज निकला. वह मिलकर एक हो गया. महान् तेज का वह पुञ्ज जाज्वल्यमान पर्वत सा जान पड़ा. देवताओं ने देखा, वहाँ उसकी ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त हो रहीं थी. एकत्रित होने पर वह एक नारी के रूप में परिणत हो गया और अपने प्रकाश से तीनों लोकों में व्याप्त जान पड़ा. भगवान् शंकर के तेज से उस देवी का मुख प्रकट हुआ. यमराज के तेज से उसके सिर में बाल निकल आये. विष्णु के तेज से उसकी भुजाऐं उत्पन्न हुईं. चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तन, इन्द्र के तेज से मध्यभाग कटिप्रदेश, वरूण के तेज से जंघा और पिंडली, पृथ्वी के तेज से नितम्ब, ब्रह्मा के तेज से दोनो चरण, सूर्य के तेज से (चरणों की) उंगलियाँ, वसुओं के तेज से हाथों की उंगलियां और कुबेर के तेज से नासिका प्रकट हुईं. देवी के दांत प्रजापति के तेज से, तीनों

नेत्र अग्नि से, भौहें संध्या से और कान वायु के तेज से प्रकट हुए. (दुर्गा सप्तशती अध्याय २. १०-१८)

१० शरणागत की पीड़ा दूर करने वाली देवि, हमपर प्रसन्न होओ. सम्पूर्ण जगत् की माता, प्रसन्न होओ. विश्वेश्वरि, विश्व की रक्षा करो. देवि तुम्हीं चराचर जगत् की अधीश्वरी हो. तुम इस जगत् का एकमात्र आधार हो, क्योंकि पृथ्वीरूप में तुम्हारी ही स्थिति है. देवि तुम्हारा पराक्रम अलंघनीय है. तुम्हीं जलरूप में स्थित हो कर सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करती हो. तुम अनन्त बल सम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो. इस विश्व की कारणभूता परा मायाहो. देवि तुमने इस समस्त जगत् को मोहित कर रखा है. तुम्हीं प्रसन्न होनेपर इस पृथ्वी पर मोक्ष की प्राप्ति कराती हो. देवि, सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही विभिन्न स्वरूप हैं. जगत् में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं. जगदम्ब, एकमात्र तुमने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है. तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है. तुम तो स्तवन करने योग्य पदार्थों से परे एवं परा वाणी हो. जब तुम सर्वस्वरूपा देवी स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली हो, तब इसी रूप में तुम्हारी स्तुति हो गई. तुम्हारी स्तुति के लिये इससे अच्छी उक्तियाँ और क्या हो सकती हैं. बुद्धि रूप से सब लोगों के हृदय में विराजमान रहने वाली तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली नारायणी देवि, तुम्हें नमस्कार है. कला, काष्ठा आदि के रूप से क्रमशः परिणाम (अवस्था परिवर्त्तन) की ओर ले जाने वाली तथा विश्व का उपसंहार करने में समर्थ नारायणी, तुम्हें नमस्कार है. नारायणी, तुम सब प्रकार का मंगल प्रदान करने वाली मंगलमयी हो. कल्याणदायिनी शिवा हो. सब पुरूषार्थों को सिद्ध करने वाली शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो. तुम्हें नमस्कार है. तुम सृष्टि, पालन और संहार की शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणों का आधार तथा सर्वगुणमयी हो. नारायणि, तम्हें नमस्कार है. शरण में आये हुए दीनों एवं पीड़ितों की रक्षा में संलग्न रहने वाली तथा सबकी पीड़ा दूर करने वाली नारायणी देवी, तुम्हें नमस्कार है. नारायणि, तुम ब्रह्माणी का रूप धारण करके हंसों से जुते हुए विमान पर बैठती तथा कुश-

मिश्रित जल छिड़कती रहती हो. तुम्हें नमस्कार है. माहेश्वरी रूप से त्रिशूल, चन्द्रमा एवं सर्प को धारण करने वाली तथा महान् वृषभ की पीठ पर बैठनेवाली नारायणी देवी, तुम्हें नमस्कार है. मोरों और मुर्गों से घिरी रहने वाली तथा महाशक्ति धारण करने वाली कौमारी रूप धारिणि निष्पापे नारायणि, तुम्हें नमस्कार है. शंख, चक्र, गदा और शार्ंगःधनुषरूप उत्तम आयुधों को धारण करने वाली वैष्णवी शक्ति रूपा नारायणि, तुम प्रसन्न होओ. तुम्हें नमस्कार है. हाथ में भयानक महाचक्र लिये और दाढ़ों पर धरती को उठाये वाराही रूप धारिणि कल्याणमयी नारायणि, तम्हें नमस्कार है. भयंकर नृसिंह रूप से दैत्यों के वध के लिये उद्योग करने वाली तथा त्रिभुवन की रक्षा में संलग्न रहने वाली नारायणि, तुम्हें नमस्कार है. मस्तक पर किरीट और हाथ में महावज्र धारण करनेवाली, सहस्त्र नेत्रों के कारण उद्दीप्त दिखायी देने वाली और वृत्रासुर के प्राणों का अपहरण करने वाली इन्द्र शक्तिरूपा नारायणि देवि, तुम्हें नमस्कार है. शिवदूती रूप से दैत्यों की महती सेना का संहार करने वाली, भयंकर रूप धारण तथा विकट गर्जना करने वली नारायणि, तुम्हें नमस्कार है. दाढ़ों के कारण विकराल मुखवाली मुण्डमाला से विभूषित मुण्डमर्दिनी चामुण्डा रूपा नारायणि, तुम्हें नमस्कार है. लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महाअविद्या रूपा नारायणि, तुम्हें नमस्कार है. मेधा, सरस्वती, वरा (श्रेष्ठा), भूति (ऐश्वर्य रूपा), बभ्रवी (भूरे रंग की अथवा पार्वती), तामसी (महाकाली), नियता (संयमपरायणा) तथा ईषा (सबकी अधीश्वरी) रूपिणी नारायणी, तुम्हें नमस्कार है. सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि, सब भयों से हमारी रक्षा करो, तुम्हें नमस्कार है. कात्यायनी, यह तीन लोचनों से विभूषित तुम्हारा सौम्य मुख सब प्रकार के भयों से हमारी रक्षा करे. तुम्हें नमस्कार है. भद्र काली, ज्वालाओं के कारण विकराल प्रतीत होने वाला, अत्यन्त भयंकर और समस्त असुरों का संहार करनेवाला तुम्हारा त्रिशूल भय से हमें बचाये. तुम्हें नमस्कार है. देवि जो अपनी ध्वनि से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके दैत्यों के तेज नष्ट किये देता है, वह तुम्हारा घण्टा हमलोगों की पापों से उसी प्रकार

रक्षा करे, जैसे माता अपने पुत्रों की बुरे कर्मों से रक्षा करती है. चण्डिके, तुम्हारे हाथों में सुशोभित खड्ग, जो असुरों के रक्त और चर्बी से चर्चित है, हमारा मंगल करे. हम तुम्हे नमस्कार करते हैं. देवि, तुम प्रसन्न होने पर सब रोगों को नष्ट कर देती हो, और कुपित होने पर मनोवांछित सभी कामनाओं का नाश कर देती हो. जो लोग तुम्हारी शरण में जा चुके हैं, उन पर विपत्ति तो आती ही नहीं. तुम्हारी शरण में गये हुए मनुष्य दूसरों को शरण देने वाले हो जाते हैं. देवि अम्बिके, तुमने अपने स्वरूप को अनेक भागों में विभक्त कर के नाना प्रकार के रूपों से जो इस समय इन धर्मद्रोही महादैत्यों का संहार किया है, वह सब दूसरी कौन कर सकती थी. विद्याओं में, ज्ञान को प्रकाशित करने वाले तथा शास्त्रों में तथा आदि-वाक्यों (वेदों) में तुम्हारे सिवा और किसका वर्णन है. तथा तुमको छोड़ कर दूसरी कौन ऐसी शक्ति है, जो इस विश्व को अज्ञानमय घोर अन्धकार से परिपूर्ण ममतारूपी गढ़े में निरन्तर भटका रही हो. जहाँ राक्षस, जहाँ भयंकर विषवाले सर्प, जहाँ शत्रु, जहाँ लुटेरों की सेना और जहाँ दावानल हो, वहाँ तथा समुद्र के बीच में भी रहकर तुम विश्व की रक्षा करती हो. विश्वेश्वरि, तुम विश्व का पालन करती हो. तुम भगवान् विश्वनाथ की भी वन्दनीया हो. जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारे सामने मस्तक झुकाते हैं वे सम्पूर्ण विश्व को आश्रय देने वाले होते हैं. देवि, प्रसन्न होओ. जैसे इस समय असुरों का वध करके तुमने शीघ्र ही हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओं के भय से बचाओ. सम्पूर्ण जगत् का पाप नष्ट कर दो और उत्पात एवं पापों के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले महामारी आदि बड़े-बड़े उपद्रवों को शीघ्र दूर करो. विश्व की पीड़ा दूर करने वाली देवि, हम तुम्हारे चरणों पर पड़े हुए हैं, हम पर प्रसन्न होओ. त्रिलोक निवासियों की पूजनीया परमेश्वरि, सब लोगों को वरदान दो.

११ हिन्दू विचार धारा के अनुसार ब्रह्मांड केवल परमात्मा का विस्तार मात्र है. परमात्मा के बाहर कुछ भी होना सम्भव नहीं है. सभी शक्तियाँ उसमे ही निहित हो सकती हैं. देवी और देवतागण भी इसलिए उसी परब्रह्म का अंश हैं. देवी और देवता एक ही शक्ति के धनात्मक और ऋणात्मक रूप हैं.

यही शिवा और शिव रूप भी हैं. (पृष्ठ ११-१३, देवी और देवता, हिन्दू प्रतीकों का एक परिचय, अग्रेजी पुस्तक, लेखक आई. के. तैमिनि)

और भी देवी आप ही देवात्मा, परब्रह्म, ईथर, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी हो. आपसे परे ब्रह्मांड में कुच्छ नहीं है. सम्पूर्ण ब्रह्मांड आपकी शक्ति का विस्तार है, और प्रलय के समय आपमें ही समा जाता है (सौन्दर्य लहरी ३५)

१२ "एक योगी की आत्मकथा" द्वारा परमहंस योगानन्द जी - परिच्छेद ३४ "हिमालय में एक राजमहल की सृष्टि" शीर्षक से एक आश्चर्यमयी गाथा - यह अनुभव योगानन्द जी के गुरू श्रीमान् लाहिड़ि महाशय को हुआ. ".. .. मेरे मार्गदर्शक ने मृदुल हँसी हँसते हुए कहा : 'आधी रात का समय है. दूर पर जो प्रकाश दिखायी दे रहा है, वह एक स्वर्ण महल की आभा है. आज रात में अद्वितीय महागुरू बाबाजी ने उस महल की सृष्टि की है. सुदूर अतीत में स्वर्ण-महल के सौन्दर्य का आनन्द लेने की तुमने इच्छा व्यक्त की थी. महागुरू अब तुम्हारी उस इच्छा की पूर्ति कररहे हैं, जिससे तुम्हारा पिछला कर्म-बन्धन टूट जाय. उसने पुनः कहा : इस भव्य महल में ही आज रात को तुम्हें 'क्रियायोग' की दीक्षा मिलेगी. बह देखो. तुम्हारे दीर्घ प्रवास की परिसमप्ति पर आनन्द मनाने के लिए तुम्हारे सभी गुरूभाई तुम्हारे स्वागतार्थ उपस्थित हैं. हमारे सामने रत्नरचित झिलमिलाता एक विशाल स्वर्ण-महल खड़ा था. चारों ओर मनोरम उद्यानों से घिरे उस महल का शीत सरोवर में पड़ रहा प्रतिबिम्ब एक अतुलनीय भव्य दृश्य प्रस्तुत कर रहा था. अत्यन्त कारीगरी के साथ बहुमूदय हीरों, नीलमों और पन्नों आदि रत्नों से जटित ऊंची ऊंची कमानें बनाई जई थीं. मणिकों की च्छटा से रक्तिम आभा बिखेरते द्वारों पर दिव्य कांति युक्त सधु-सन्त खड़े थे. अपने साथी के पीछे-पीछे मैंने एक प्रशास्त स्वागत कक्ष में प्रवेश किया. सुगन्धित द्रव्यों अवं गुलाब की सुगन्ध हवा में फैल रही थी. क्षीण दीपों से विविध रंगों के प्रकाश निकल रहे थे. भक्तों की च्छोटी-च्छोटी मंडलियाँ वहाँ

विराजमान थीं. उन भक्तों में कुछ श्यामवर्ण के और कुछ गौरवर्ण के थे. वे या तो धीमे स्वर में मंत्रोच्चारणकर रहे थे या आन्तरिक शांति में ध्यानमग्न हो कर ध्यानमुद्रा में बैठे हुए थे. समस्त वातावरण आनन्दमय हो रहा था.

यह सब देख कर मेरे मुख से कुछ आश्चर्योद्गार फूट पड़े, जिसे सुनकर मेरे पथप्रदर्शक ने सहानुभूतिपूर्ण हँसी हँसते हुए कहा : देख लो, देख लो, खूब अच्छी तरह से देख लो और इस भव्य कलाकृति-युक्त महल का आनन्द लो, क्योंकि केवल तुम्हारे सम्मान के लिए ही इसकी सृष्टि हुई है.

.. .. अनन्त स्वार्थसाधक इच्छाशक्ति के साथ एकाकार हो बाबाजी मूलभूत अणु-परमाणुओं को सुसंयुक्त कर उन्हें किसी भी आकार में प्रकट कर सकते हैं. मुहूर्त-मात्र में निर्मित यह स्वर्ण महल उतना ही वास्तविक है, जितनी यह धरती है. जिस प्रकार ईश्वर की कल्पना द्वारा पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है, और उसकी इच्छा शक्ति इसे सम्पोषित करती है, उसी प्रकार बाबा जी ने इस सुन्दर महल की सृष्टि अपनी इच्छा द्वारा की है, और इसके अणुओं को वे अपनी इच्छाशक्ति द्वारा संगठित किये हुए हैं. जब इस रचना का उद्येश्य पूर्ण हो जाऐगा, बाबाजी उसको विसर्जित कर देंगे.

प्रस्तुत कर्त्ता - राजीव कुमार भटनागर
rajiv@gita-society.com
मूल अंग्रेजी संकलन ९.४.१९९५
का अनुवाद व विस्तार करके
नवरात्रों के शुभ अवसर पर
देवी माता के चरणों में १९.४.२००२ को भेंट किया गया
महामाई की जय हो और उनकी कृपा हम सब पर बनी रहे

देवी-सूक्त

प्राचीन काल में अम्भृण नामक एक ऋषि थे. उनकी वाक् नामक एक विदुषी कन्या थी. उस विदुषी कन्या नें आठ मन्त्रों की रचना की जिन्हें देवी-सूक्त के नाम से जाना जाता है. (यह देवी सप्तशती के सूक्तों से भिन्न हैं) -

अहं रुद्रे भिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरूत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरूणोभा बिभर्मुहमिस्द्राग्नी अहमश्विनोभा।१।

मैं (सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा) रूद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वदेवों के रूप में विचरण करती हूँ. मित्र, वरूण, इन्द्र, अग्नि और अश्विनी कुमारों को मैं ही धारण करती हूँ.

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारभुत प्रषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हव्ष्मते सप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ।२।।

मैं शत्रुहन्ता सोम को, विश्वकर्मा को, सूर्य को और (षडैश्वर्यशाली) देवों को धारण करती हूँ. जो (मनुष्य) देवों के उद्देश्य से प्रचुर हर्वि युक्त सोम याग आादि का अनुष्ठान करते हैं, उन यहामानों का यज्ञफल मैं ही धारण करती हूँ. (मैं जो एकमात्र चैतन्यस्वरूप आात्मा हूँ, समस्त कर्म रूप में, कर्म संस्कार रूप में तथा कर्म फल रूप में विराज रही हूँ, इस मन्त्र का यही अभिप्राय है)

" धार्मिक संस्कार मैं हूं, यज्ञ मैं हूं, स्वधा मैं हूं, औषधि मैं हूं, मंत्र मैं हूं, घी मैं हूं, अग्नि मैं हूं तथा हवन कर्म भी मैं ही हूं. मैं ही इस जगत का पिता, माता, धारण करने वाला और पितामह हूं. मैं ही जानने योग्य वस्तु हूं; पवित्र ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूं. प्राप्त करने योग्य परमधाम, भरण करने वाला, सबका स्वामी, साक्षी, निवासस्थान, शरण लेने योग्य, मित्र,

उत्पत्ति, प्रलय, आधार, निधान और अविनाशी कारण भी मैं ही हूं." (गीता ९.१६-१८)(४.२४, ७.१०, १०.३९ भी देखें).

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञि थानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरूत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ।३।।

मैं (सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारिणी) जगदीश्वरी हूँ. मैं (गो, हिरण्यादि पार्थिव तथा ज्ञान-विद्यादि अपार्थिव) धन को देने वाली हूँ. मैं उस ज्ञान को देने वाली हूँ जिससे जीव 'मैं' के स्वरूप की उपलब्धि कर सके - जो ज्ञान सब उपासनाओं का आदि है. इस प्रकार के 'मैं' (आत्मा) का देवतागण भजन करते हैं. मैं बहुभावों मे अवस्थित हूँ (मैं अनन्त भावों में तथा अनन्त जीवों में प्रविष्ट हूँ). देवतागण मेरे बहुभावों की उपासना करते हैं.

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ई शृणोस्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ।४।।

जीव अन्नदि जो कुछ खाता है, जो कुछ देखता है, जिन श्वास-प्रश्वासादि क्रियाओं के द्वारा जीवित रहता है, और जो कुछ सुनता है, ये क्रियाऐं मेरे ही द्वारा निष्पन्न होती हैं. मुझे जो नहीं मानते, वे संसार में क्षीणता प्राप्त करते हैं. हे (श्रुत) सौम्य, श्रद्धा से सुनो, जो कुछ तुम्हे मैं कहती हूँ. (हे अर्जुन, तुम जो कुछ कर्म करते हो, जो कुछ खाते हो, जो कुछ हवन करते हो, जो दान देते हो, जो तप करते हो, वह सब मुझे ही अर्पण करो. (गीता ९.२७)

अहमेव सह्यमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरूत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ।५।।

मैं स्वयं ही इन तत्त्वों का उपदेश देती हूँ और देवों तथा मनुष्यों के द्वारा ये आदृत होते हैं. मैं जिसे चाहती हूँ उसे उन्नतपद देती हूँ . उसे (आध्यात्म जीवनोपयोगी) सुबुद्धि सम्पन्न करती हूँ, आत्मदर्शी ऋषि बनाती हूँ और जगत् सृष्टि स्थिति प्रलय कार्य के उपयोगी ब्रह्मा का पद देती हूँ.

(ऋग्वेद में दिये गये देवी सूक्त में भी देवी कहतीं हैं "मैं जिस जिस पुरूष की रक्षा करना चाहती हूं', उस उस को सबकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बना देती हूँ. उसी को सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, परोक्षज्ञान सम्पन्न ऋषि तथा उत्तम मेधाशक्ति से युक्त बनाती हूँ.)

(गीता में भी भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं - मुझ में ही चित्त को स्थिर रखने वाले और मेरी शरण में आने वाले भक्तजन आपस में मेरे गुण, प्रभाव आदि का कथन करते हुए निरन्तर संतुष्ट रहकर रमते हैं. (१०.०९) निरन्तर मेरे ध्यान में लगे प्रेमपूर्वक मेरा भजन करने वाले भक्तों को मैं ब्रह्मज्ञान और विवेक देता हूं, जिससे वे मुझे प्राप्त करते हैं. (१०.१०) उनपर कृपा करके उनके अन्तःकरण में रहने वाला, मैं, उनके अज्ञानजनित अन्धकार को तत्त्वज्ञानरूपी दीपक द्वारा नष्ट कर देता हूं. (१०.११))

अहं रूद्राय ध्नुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शर वे हन्तवा उ ।
अहं जनाय सम-दं कृणोग्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ।६।।

मैं ब्रह्मज्ञान-विरोधी विनाश योग्य रूद्र को (एकादश इन्द्रियों को) हनन करने लिए (प्रणयरूप) धनु में (आत्मरूप) शर का सन्धान करती हूँ. (इस प्रकार) मैं मनुष्यों के लिए युद्ध करती हूँ और स्वर्ग एवं मर्त्यलोक मे आर्विभूत (प्रविष्ट) होती हूँ.

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वे तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि । ७।।

मैं जगत्-पिता (हिरण्यगर्भ) को प्रसव करती हूँ. इस के ऊपर आनन्दमय कोष के मध्यस्थ विज्ञानमय कोष में मेरा कारण शरीर अवस्थित है. मैं समग्र भुवन में अनुप्रविष्ट होकर अवस्थित हूँ. वह सामने स्वर्ग लोक है, उसे भी मैं अपने शरीर के द्वारा स्पर्श कर रही हूँ.

(गीता - "हे अर्जुन, मेरी अध्यक्षता में माया देवी (अपनी प्रकृति के द्वारा) चराचर जगत को उत्पन्न करती है. इस तरह सृष्टि-चक्र चलता रहता है. (९.१०) हे अर्जुन, मेरी महद् ब्रह्मरूप प्रकृति सभी प्राणियों की योनि है, जिसमें मैं चेतनारूप बीज डालकर (जड़ और चेतन के संयोग से) समस्त भूतों की उत्पत्ति करता हूं. (१४.०३) हे कुन्तीपुत्र, सभी योनियों में जितने शरीर पैदा होते हैं, प्रकृति उन सबकी माता है और मैं चेतना देने वाला पिता हूं. (१४.०४)")

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परोदिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिमा सम्बभूव ।८।।

जब मैं वायु के सदृश प्रवाहित होती हूँ, तभी इस समग्र भुवन की सृष्टि का आरम्भ होता है. इन स्वर्ग तथा मर्त्यलोक के परे भी मैं विद्यमान हूँ, यही है मेरी महिमा.

तन्त्रोक्त देवीसूक्त
(दुर्गा सप्तशती के ५ वें अध्याय से)

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणता स्म ताम् ॥१॥

रौद्रायै नमो नित्याये गौर्यै धत्र्यै नमो नमः । ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥२॥

कल्याण्यै प्रणतां वृद्धयै सिद्धयै कुर्मो नमो नमः । नैऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥३॥

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै । ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥४॥

अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः । नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥५॥

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥६॥

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥७॥

या देवी सर्वभूतेष बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥८॥

या देवी सर्वभूतेष निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥९॥

या देवी सर्वभूतेष क्षुधारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१०॥

या देवी सर्वभूतेष सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥११॥

या देवी सर्वभूतेष शक्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२॥

या देवी सर्वभूतेष तृष्णारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१३॥

या देवी सर्वभूतेष क्षन्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४॥

या देवी सर्वभूतेष जातिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१५॥

या देवी सर्वभूतेष लज्जारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६॥

या देवी सर्वभूतेष शान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१७॥

या देवी सर्वभूतेष श्रद्धारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१८॥

या देवी सर्वभूतेष कान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९॥

या देवी सर्वभूतेष लक्ष्मीरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२०।।

या देवी सर्वभूतेष वृत्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२१।।

या देवी सर्वभूतेष स्मृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२२।।

या देवी सर्वभूतेष दयारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२३।।

या देवी सर्वभूतेष तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२४।।

या देवी सर्वभूतेष मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२५।।

या देवी सर्वभूतेष भ्रान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२६।।

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या । भतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ।।२७।।

नितिरूपेण याकृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२८।।

स्तुता सुरैःपूर्वमभीष्टसंश्रायात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ।।२९।।

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।

या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्ति विनम्र मूर्तिभः ।।३०।।

(इसके बाद 'प्राधानिक' आदि तीनों रहस्यों का पाठ किया जाता है.)

ॐ

उमेश्वरे उमामयी, रमेश्वरे रमामयी, गिरीश्वरे प्रमामयी,
क्षमामयी क्षमावताम्
सुधाकरे सुधामयी, चराचरै विधामयी, क्रियासु संविधामयी,
स्वधामयी स्वधावताम्
जगत्सु चेतनामयी, मनःसु वासनामयी, कवीन्द्र भावनामयी,
प्रभामयी प्रभावताम्
धनेषु चंचलामयी, कलावतां कलामयी, शरीरिणा मिलामयी,
'शिलामयी' सदावताम्

जो शक्ति शिव और विष्णु के समीप उमा और रमा के रूप में है वही गिरीश्वरे वाक्पति में प्रमामयी यथार्थ ज्ञान रूप से वर्त्तमान है. वाणी में जो प्रमा है वह शक्ति की शक्ति है. सुधाकर में सुधा रूप, स्थावर-जंगमात्मक प्रपंच में प्रकारमयी, क्रियाओं में संविधान रूप से तथा पितरों में स्वधा रूप से विद्यमान है. प्रकारमयी का तात्पर्य है कि स्थावर और जंगमों में वह शक्ति ही तो सर्वत्र व्याप्त है. केवल यह स्थावर है, यह जंगम है, आदि प्रकार-मात्र भेदक है. जगत में चेतनारूप, मन में प्राक्कर्म जनित संस्कार (वासना) रूप, कवियों में भावना-शक्तिरूप, प्रभाशालियों में प्रभारूप, मेघों में विद्युद्रूप से, कलाशालियों में कलारूप से, शरीर धारियों में इला (पृथिवी) रूप से विद्यमान, वह भगवती शिलामयी हमारी सदा रक्षा करें

दिनेस में प्रभामयी, मयंक चांद्रिकामयी, हुतास धीर धामयी
प्रकासमान काय है ।

पुरातनी परामयी जगत्परंपरामयी, पुरान ब्रह्म भामयी प्रकाम
कामदाय है ।
धरामयी चरामयी आसेपथावरामयी, अनंद कंदरामयी
अमंदबुद्धिभाय है ।
विरंचिमें गिरामयी, रमेस में रमामयी, महेस में उमामयी,
सिलामयी सहाय है ।।

दो वर्ष की अवस्था वाली कन्या कुमारी, तीन वर्ष की त्रिमूर्ति, चार वर्ष की कल्याणी, पाँच वर्ष की रोहिणी, छह वर्ष की कालिका, सात वर्षकी चण्डिका, आठ वर्षकी शाम्भवी, नौ वर्ष की दुर्गा और दस वर्ष की कन्या सुभद्रा कही गयी है. ऐसी दस कुमारियों को अन्न, वस्त्र, भूषण, फूल, अनुलेप, नैवेद्य, पाद्य, अर्ध्य, धूप, कुंकुम, चन्दन तथा जल आदि अर्पण करके, बिना-जाति भेद के, पूजन करना चाहिए. ऐसा करने से विजय, मंगल तथा त्रिभुवन की तृप्ति का फल मिलता है. कुमारी पूजन से महान् भय, दुर्भिक्ष आदि उत्पात, दुःस्वप्न, दुर्मृत्यु तथा अन्य भयों का निवारण होता है. पूजित हुई कुमारियाँ विघ्न, भय, और अत्यन्त उत्कट शत्रुओं को भी नष्ट कर देती हैं. कुमारी साक्षात् योगिनी है. जो कुमारी पूजन करता है, उस पर चराचर प्राणी प्रसन्न होते हैं. (योगिनी तन्त्र, यामल तन्त्र, काली तन्त्र, रूद्रयामल तन्त्र, कुब्जिका तन्त्र आदि सभी में ऐसा ही लिखा है. मन्त्रमहौदधि के अठारवें तरंग में भी ऐसा ही लिखा है)

USE OF ALLEGORY AND SYMBOLS IN DURGA SAPTASHATI

This document has been compiled by me by the grace of Mother Goddess Durga[1]. I have only been able to put together some prayers at the feet of Mother Goddess from different books and sources. I pray Her to help me and humbly seek Her Blessings in this humble effort, which is solely meant to sing the praise of Mother Goddess Bhagwati, also known as Maha Saraswati, Chitta Swarupini, Ambika, Mahakali, the Gentle Mother showering Her Divine Grace on all beings[2].

---

1 Durga is one of the thousand names of Goddess Parvathi, the consort of Lord Siva.

2 Please see LALITA-SAHASTRA-NAMA STROTRA, Saubhagya Bhaskar Bhashya, Verse 17, which reads - Purusham Vaa Smredh Devi Stri Rupam Vaa Vichintayet, Athwa Nishkalam Dhyayet Sat Chit Anand Lakshnam, meaning "

the reader to understand the use of allegory and symbols used in the Holy Book DURGA SAPTASHATI, which is part of Markandeya Purana (81st Chapter). Durga Saptashati contains 700 verses in 13 Chapters divisible into 3 Parts. Let us first recapitulate the story of Durga Saptashati[3] in brief, before we proceed further.

A King named Suratha is deprived of his kingdom by the machinations of his ministers and a *Vaishya* (merchant) named Samadhi is driven out of his home by his ungrateful wife and children. Both of them feel very unhappy and go to the hermitage of a sage named Medha to seek consolation. There they ask the sage why people in this

(..continued)

Transcendental Bliss". We should worship God as a Male God to get the love and affection as from a Father, as a Female God to get love as from a Mother. CHIDGAGANCHANDRIKA says, "Amb, You are neither a male, nor a female, nor neuter. Your Husband is also beyond all these attributes. Without your Divine Grace, we can not think of you or worship you".

3 The study on symbolism as used in Durga Saptashati, as well as its abridged story is heavily based on the Book titled "An Introduction to Hindu Symbolism" by Shri L. K.

be surprised at in this universal phenomenon of human life. The Divine Power (Devi)[4] which lies at the basis of this

---

4 The symbolic representation of Sakti as a woman has often raised a good deal of criticism from theists who are convinced of the masculine nature of God. In Sir John Woodroffe's words, a critic of this school once described Saktism as a "a worthless system, a mere feminisation of orthodox Vedanta - a doctrine teaching the primacy of the female and thus fit only for "suffragist monists". God as the absolute is neither male nor female nor neuter in the sense optimists and sociologists use the terms, but "God is Mother to the Sadhaka (of the Sakta School) who worships Her Lotus Feet, the dust of which are millions of universes". Says the Devi in Devi Bhagvata, "That Male (Purusa) and myself are ever the same .... The Purusa is what I am, I am what the Purusa is.. O Aja, for the purpose of creation the difference arises at the time of creation. It is only the difference between the seen and unseen. At the time of dissolution I am neither male nor male nor neuter. The difference is imagined only at the time of creation". According to Sakta scriptures, it is

Mahamaya (the Great Illusion) which involved human beings in the circuit of Samsara (Transmigratory Experience) and results in their remaining attached even to those things which are a source of misery to them. The king then asks several questions about this Divine Power (Devi). Who is She? Where does She come from? How does She work?

The Sage explains the nature of this Universal Divine Power (Devi) or Durga and then proceeds to narrate for the benefit of Suratha and Samadhi a story describing the recurrent appearance of Devi to help the Devas and destroy the Daityas.[5]

(..continued)

symbolically consider Sakti in Her creative aspect as the female, because it is the productive principle. On the basis of our worldly experience, the Saktas have conceived of the Supreme Being as the Divine Mother, for like the human mother She is more direct and active agent in the production and nourishment of the world-child.

- from Two Forms of Sakti - Tripura Sundari and Kali.

The Kalyana Kalptaru (Siva Number Vol.XXXVI, No.1) Oct'90 p.318

5 Durga Saptashati contains many wars of

the world is best given in a nutshell in the last two lines of 11th Chapter where the Devi promises to appear and help the Devas whenever they are overpowered by the forces of evil. In these two lines we find an almost exact reproduction of the idea in the well known stanza[6]. The Story in Durga Saptashati may, therefore, be considered as an illustration and elaboration of this idea or promise, given in these two books, of Divine intervention when the affairs of humanity go seriously wrong and threaten to get out of control.

The Durga Saptashati is generally used in the invocation of *Shakti* or Divine Power (Devi) for help in removing different kinds of difficulties which beset human beings, individually or collectively, or in gaining some object which the worshipper desires for his personal satisfaction. The proper recitation of the whole book accompanied by a ritual is believed to produce remarkable results in achieving one's aim owing to the influx of Divine Power (Devi) and a

(..continued)

descriptions of wars with Asuras/Daityas. The first and foremost description of Devi's war with Asuras is found in SAUR PURANA. In this Purana Siva destroyed Rakt-Aksha and Dhumra-Aksha etc. Daityas.

6 Chapter IV Verse 7 of Srimad Bhagwad Geeta is "Yada Yada hi Dharmasya

or some other calamity. The question whether the use of a book of this nature in this manner is desirable or justifiable from the spiritual point of view need not be considered here, as even a cursory study of the book will reveal that invocation of Divine Power (Devi) is not only allowed but also encouraged in the book.

The Theosophists will understand and agree that the whole book is about different stages in the unfoldment of man and hints that the invocation and descent of Divine Power (Devi) from within one's own heart enables an aspirant to overcome his weaknesses and difficulties and advance further at different stages of his progress. The idea that the story gives in allegories is not new. Many students who have studied the book carefully and tried to go deeper into its meaning have sensed the fact that the story is not to be taken literally but has a deeper meaning bearing on the struggle which is going on all the time between forces which help the advance of man towards his goal and those which retard or block his progress. Some have even tried to correlate different features of the story with the stages of development which they indirectly indicate. But this has been done in a rather sketchy manner, and has not been able to bring out fully the allegorical nature of the whole story.

The story in the first part relates to the period

devour Brahma the Creator. Brahma in His desperation prayed to Yoga-Nidra, the special Power of Vishnu which functions during the period of dissolution to wake up the Lord, and make Him destroy these two Daityas who threatened His life. When Vishnu woke up He began to fight with the Daityas with His bare hands. But when He was not able to kill them even after five thousand years He used His power of illusion as a result of which the arrogant Daityas said to Vishnu : "We are very pleased with your valour. Ask for a boon from us." Vishnu replied : "If you are pleased to give a boon then submit to being killed by me." Being thus caught in a trap they thought they could yet escape death by laying down a condition which was impossible to fulfil for there was nothing but the Ocean all round. So they said : "But You will have to kill us on dry land." Whereupon

---

7 In Vedic Period, the first month of the year was called MADHU. Another month name is MADHAV. In fact these two months were the Spring Season Months.

8 The story of Madhu Kaitabha also appears in DEVI BHAGWAT, Part-I, Chapters 6 to 9.

In MATASYA PURANA (170/2), and KALIKA PURANA (Ch 61), these two Daityas Madhu and Kaitabh are called Rajo Guna and

According to second story a Daitya called Mahishasura was born at one time and became so powerful that he drove out all the Devas from Heaven and became the lord of all the three worlds. He oppressed the Devas so much that they went in a body under the leadership of Brahma to Vishnu and Shiva. On hearing the complaint of the Devas, Vishnu and Shiva became very angry and as a result of this a light came out from their bodies and that of the other Devatas. All these lights combined and took the form of a Devi whose radiance filled the whole Universe. Each of the Devatas then presented to this Devi a weapon or an ornament as a gift. After the Devi had been equipped in this manner, She began to produce a tremendous sound which filled all space.

On hearing this sound Mahishasura gathered his hosts and rushed towards its source. When he reached the spot, he saw the Devi standing there with arms extending in all directions and holding all kinds of weapons. The

---

9 At many places, in Riga Veda and elsewhere Madhu is called SURYA and Kaitabha CHANDRA. Setting the discipline for Sun and Moon at the time of Manifestation of

fiercely the Daityas fought, how all the breaths of the Devi were transformed into fighters fully equipped with all kinds of weapons and the battle raged until the Daitya army was routed. When Mahishasura saw his army being routed he took the form of a buffalo (from which the name Mahishasura is derived) and rushed towards the Devi. When She saw Mahishasura coming towards Her, She threw Her lasso round his neck and tied him down. Thereupon Mahishasura took the forms of different animals, one after another, and ultimately a form with the upper part of a human being and the lower part of a buffalo. When the Daitya was undergoing this transformation the Devi transfixed him with Her lance and cut off his head. The remaining Daityas ran away to Patala (the nether world) and the Devatas and sages rejoiced, worshipped the Devi and sang a Hymn in Her praise. When the Devi asked them what they wanted, they said : "By killing Mahishasura you have already ended our misery. But if you want to grant us a boon, then, O Mother ! be pleased to appear and remove our difficulties whenever we remember you in our distress. And may those who invoke you through this hymn obtain what they desire for their welfare." The Devi granted their prayer and disappeared. Thus ends the second part of the story.

The third part of the story which is the longest and most important from allegorical point of view

remembered the promise that the Devi had given on the previous occasion and prayed to Her to come and put an end to their misery. The Devi appeared in the form of Parvati and on learning why She had been invoked, a part of Her was projected outside in the form of a beautiful Devi called Ambika whereby Parvati was transformed into another Devi called Kalika who was black and ugly.

Two Daityas, called Chanda and Munda, saw Ambika and went and told Shumbha about her indescribable beauty. Thereupon Shumbha asked Sugriva, his attendant, to go immediately to Ambika and very tactfully persuade Her to become his consort. When Sugriva conveyed the message, Ambika replied : "I am under a vow. Only he who can conquer me in battle and thus destroy my egoism can be my Lord. If Shumbha wants me in marriage let him come and first defeat me in battle." When Shumbha heard the Devi's reply he became very angry and ordered Dhumra-Lochana to go with any army and forcibly bring the Devi. A fierce battle followed in which Dhumra-Lochana was killed and his army was completely routed. Another army was sent under the two Daityas, Chanda and Munda, but it met the same fate. Chanda was killed by the Devi by merely uttering the syllable *ham*. Then Shumbha ordered Raktabija to go with another large army. But before the battle began the Devi sent Shiva as a messenger to Shumbha

Then followed a fierce battle in which all the Devatas sent their respective Powers to help the Devi, each Power having the same form as the corresponding Devata. The army of the Daityas was again routed and Rakta-bija was killed.

Shumbha, the king of the Daityas, himself came to the battlefield, after Nishumbha, his own brother, was also killed and started fighting with all kinds of weapons. When he found he could not do anything he taunted the Devi thus : "You are very proud of your valour but your success is due solely to the help you are getting from the other Powers." The Devi replied : "I am One[10]. There is no one else besides me. Look ! they are all my own expressions and I am taking them back into myself. I will now fight thee alone." When She said this all the Powers which had been sent to Her by the different Devatas[11] disappeared and the Devi was left

---

10 "Devi, You are the Universal Mind, Ether, Air, Fire, Water and Earth. There is nothing in the Universe beyond you or except you. You Yourself manifest Your Divine Power through Yoga Shakti and stay as Parvati in all Your Glory by the side of Lord Shiva". (SAUNDARYA LEHRI 35.)

11 According to Hindu philosophy this Universe is merely an expression or

exercised in relation to the manifested Universe must be rooted in that Brahman and must be ultimately His Functions and Powers. The Devis and Devatas can, therefore, be nothing but representations of His Functions and Powers. In the manifested Universe, each function must be related to its specific power which can make it effective; so that the whole set of functions is matched by a corresponding set of powers like an object and its shadow, and the Devis and Devatas can thus be paired off scientifically.

The Devatas and Devis are shown in male and female forms because the function and the corresponding power which enables that function to be exercised are related to each other as two poles, or positive and negative principles. In fact the existence of the manifested Universe depends upon the primary differentiation of the one Reality into two polar aspects, one positive and another negative, the positive aspect being the source of all functions and negative, powers. These two opposite aspects are called Shiva and Shakti and from them arise all the functions and powers which are required when a manifested universe comes into existence. The main functions are, of course, those of

ultimately even weapons were discarded and the fight went on with fists etc. In the last stage of this fight Shumbha jumped up and went into the Akasha (sky) and the fight went on until he was killed.

When the Daityas were finally defeated the Devatas offered to the Devi one of the most beautiful and philosophically profound hymns[12]. This hymn throws light on the different aspects of Divine Power in its philosophical and religious aspects and raises the heart of the devotee to the

(..continued)

there are innumerable others which are derived from or associated with these.

Page 11-13, Chapter - DEVIS and DEVATAS
AN INTRODUCTION TO HINDU SYMBOLISM : I. K. TAIMINI

12 Talking of Hymns, please also refer to the Hymn offered by Mahatma Arjuna just before the famous Maha Bharata War was fought. As the two forces were ready to strike, Lord Krishna directed Mahatma Arjuna to offer a Hymn to Bhagwati Durga and seek Her Blessings for winning the War. Mother Goddess appeared in the War field and Blessed Mahatma Arjuna. Pandavas won. The Hymn ***(Namastey Sidh Senani Arye Mandar Vasini ...)***

personal to the universal level. After the hymn the Devi promised to appear and destroy the forces of evil whenever this was necessary, made a few predictions, and disappeared.

Thus ends the story narrated by the great sage Medha before Suratha and Samadhi. The sage advised them to take refuge in the same Divine Power to get rid of the illusions and consequent attachments. After hearing this story both of them realized the futility of pining for the world and its enjoyments and decided to retire to the banks of a nearby river and perform *tapasya* (austerities) so that they could also get a vision of the Devi. When they had completed their *Sadhana* and were ready, the Devi appeared before them and asked them what they wanted. Suratha who had lost his kingdom prayed that he might be helped to regain it and rule over it without attachment. Samadhi wanted nothing except Moksha or Liberation. The Devi granted the prayers of both and She then disappeared.

Here also ends the Story of Durga Saptashati in its external aspect. Anyone who reads it can see easily that it is an allegorical presentation of some truths and without such inner significance it would be a meaningless mythological story with no relation to the facts of real life. However, while this will be clear it will not be easy to decipher the allegory

see immediately that the story in Durga Saptashati seeks to give, in an allegorical form, the liberation of human consciousness from the illusions, limitations and attachments of the lower worlds. These limitations and illusions are a necessary part of the evolutionary process, through which the embryonic soul has to pass, before it is fit to undertake the struggle with these limitations and illusions and to realize its true Divine nature which leads to its Liberation. The *jivatma* (individual soul) is essentially Divine but in its descent into the lower worlds of manifestation loses the awareness of its Divine nature and its evolution in these worlds takes place in a state of spiritual darkness. When, because of having reached a fairly high stage of mental development and maturity, it is fit to enter the field of spiritual evolution it faces its first difficulty on this path. The personality, through the instrumentality of which this spiritual evolution has to take place, is cut off from its Divine source and is not even aware that it has a Divine origin and a Divine destiny to fulfil. Its Buddhi or intuition has not begun to function, *viveka* (discrimination) is not yet born and so in spite of its readiness for the higher stages of evolution and in spite of the intellect being highly developed, the spiritual soul remains imprisoned within the unenlightened and wayward personality and there is no means of redeeming it. Two dangers especially threaten it : the eternal pursuit of pleasure and power by the personality. It is under these conditions of spiritual *pralaya*

The first part of the story obviously represents this stage. Brahma who symbolizes the Universal Mind and is represented by the Higher mind in the microcosm prays to Vishnu to destroy the two enemies, Madhu and Kaitabha. The awakening of Vishnu is obviously the birth of discrimination in the personality. When the light of Buddhi irradiates the mind it destroys complacence and makes even the personality see partially the illusions and limitations of ordinary human life and the urgent necessity of unfolding the spiritual nature. The way is thus opened for the higher stages of evolution and the redemption of the *jivatma*.

One interesting and significant point in this part of the story is that it is the two enemies of Brahma, Madhu and Kaitabha, who in their infatuation ask Vishnu to request them for a boon, and thus bring about their own destruction. Does not the lower mind or the lower self in man open the door for discrimination by directing its attention to the higher spiritual worlds in the hope of gaining subtle pleasures and greater powers? It is a common experience that people do not generally enter the path of spiritual unfoldment directly. They are gradually lured into it by the desire of gaining and enjoying the pleasures and powers of the subtler worlds - in the heaven of the orthodox religious people, or by developing psychic powers. This inquiry into

destroys not only the desire for the pleasures and powers of the lower life but also those of the subtler worlds. The desire to find that Reality, which transcends the phenomenal world, replaces all other desires. We thus see how the desire for pleasures and power by taking a subtler form brings about its own destruction and it is this phenomenon which is symbolized by the destruction of Madhu and Kaitabha by Vishnu.

After discrimination has developed to an adequate degree and spiritual evolution has been made possible the first great difficulty which appears in the path of the aspirant is the lower self with all its animal propensities and undesirable tendencies of the lower mind. For ordinarily, discrimination gives only perception and not control, and when the aspirant begins to feel the need for changing his life and treading the path but finds the lower self with all its ingrained lower desires and tendencies blocking his way, the struggle between the lower and the Higher self in man begins. In addition, it is a struggle of various characters in which he has to fight on many fronts at the same time and requires different kinds of faculties and powers. In the early stages when his pride and egoism are still strong he depends solely upon his own mental powers to fight this multi front battle. But he soon realizes that though this struggle requires self-confidence and self reliance success cannot be achieved

gradually learns to utilize them in this difficult struggle with his lower nature. And it is only when these spiritual powers come to his aid that he begins to gain ascendency over the lower self. True self-reliance is not reliance on the lower self but upon the Divine Self who is present in the heart of every human being. The battle is long lasting and sometimes fierce but if the aspirant perseveres and does not lose his faith in the Divine Power within him the lower self is ultimately vanquished and ceases to be an obstruction in his path. He has still many hurdles to cross, and many subtler enemies to conquer but he has been able to eliminate those *tamasic* (passive) tendencies, which resist all his efforts to bring about the required transformations within himself.

The story of Mahishasura depicts this phase of our spiritual development in an allegorical form. The following points will show its allegorical nature.

In the first place, the Devas go to Vishnu and Shiva under the leadership of Brahma and pray for deliverance from the tyranny of Mahisasura. This is an allegorical method of pointing out that the aspirant is still in the realm of the intellect largely and has not yet unfolded his spiritual faculties. No direct access to the spiritual or Divine world is possible for him and it is under the inspiration and guidance of the Higher mind that this effort to arouse his

awakening. These different kinds of powers which are merely differentiated forms of the One Supreme Power are needed at this stage because of the multifarious nature of the task which has to be accomplished and also because the aspirant is not yet sufficiently developed to utilize Spiritual Power in its undifferentiated form. It is through this composite, non specific spiritual power working in different spheres, which is shown in the allegory to be derived from the different Devatas, that the lower self is conquered and the way is opened for spiritual unfoldment.

Two significant features of this part of the story may be noted. The first is the different forms, which Mahisasura assumes in fighting the Devi before he is finally transfixed by Her lance and killed. He takes the forms of a buffalo, a lion and elephant in succession which no doubt symbolize the different animal tendencies in man. The human form which finally comes out of the animal form is obviously the lower mind in its earlier stages of development when it is merely an instrument of the lower desires and refuses to be an instrument of the Higher self.

The second important point we may note here is the promise, which the Devi gives to the Devas to appear before them whenever they remember and invoke Her in their difficulties. This symbolizes the fact that after

stage in spiritual development and is indispensable for treading the path of Higher Yoga. As we have seen in the allegory this privilege is gained only after the death of the lower self, or rather its subservience to the Higher Self. When the lower nature in man has been controlled and purified and serves merely as an instrument of the Higher Self, the lower self may be said to be dead.

The third part of the story is the longest and the most important from the point of view of its spiritual significance. This is to be expected because real spiritual unfoldment begins only when the light of Buddhi or discrimination steadily irradiates the mind and the lower nature of the aspirant have been completely subjugated. The first two stages merely prepare the ground for the real work, which is to follow in the third stage.

The story again begins with the invocation of Divine Power by the Devas although the enemies on this occasion are different and the invocation of the Divine Power is direct. The Daityas against whom help is now sought are the `enemies' who beset the path of the Yogi in the higher stages of his spiritual unfoldment. Let us consider a few salient features of this part of the story.

The desire of Shumbha to win the Devi as his

13 Chapter-34 : MATERIALIZING A PALACE IN THE HIMALYAS (Excerpts from An Autobiography of a Yogi : by Swami Paramhansa Yoganand ji)

".....My first meeting with Babaji took place in my 33rd year. Lahiri Mahasaya (He was guru of Swami Paramhansa) had said. In the autumn of 1861, I was stationed in Danapur as an accountant in the Military Engineering Department of the Government. One morning the office manager summoned me.

Lahiri, he said, a telegram has just come from our main office. You are to be transferred to Ranikhet...

...I finally reached a small clearing whose sides were dotted with caves. On one of the rocky ledges stood a smiling young man, extending his hand in welcome. I noticed with astonishment that, except for his copper coloured hair, he bore a remarkable resemblance to myself. Lahiri, you have come! The saint addressed me affectionately in Hindi. Rest here in this cave. It was I who called you.

wondrous current swept through my brain, releasing the sweet seed memories of my previous life....I tearfully embraced my master's feet. For more than three decades, I have waited for you to return to me. Babaji's voice rang with celestial love. You slipped away and disappeared into the tumultuous waves of the life beyond death. The magic *wand* of your karma touched you, and you were gone. Though you lost sight of me, never did I lose sight of you. I pursued you over the luminescent astral sea where the glorious angels sail. ...He led the way through the forest. At a turn in the path I saw a steady luminosity in the distance. Can that be the sunrise. I enquired. The hour is midnight. Yonder light is the glow of a golden palace, materialized here tonight by the peerless Babaji. In the dim past, you once expressed a desire to enjoy the beauties of a palace. Our master is now satisfying your wish, thus freeing you from the last bond of your karma. (The karmic law requires that every human wish find ultimate fulfilment. Desire is thus the chain that binds man to the reincarnational wheel.) The magnificent palace will be the scene of your initiation tonight into Kriya Yoga. All your brothers here join in a paean of welcome, rejoicing at

It is this subtlest kind of egoism and ambition which find expression on the highest levels that is symbolized by Shumbha, and Devi's vow in the story merely points out that only he who has been able to destroy this egoism can use the spiritual power. If the Yogi yields to the temptation and tries to gain this power while his ego is still active he comes in conflict with the Power and fights until the egoism is destroyed. If his discrimination is sufficiently developed and he does not yield to the temptation, he still needs the help of that Power for transcending the illusion, which is the cause of this subtlest kind of egoism. So in both cases it is the

(..continued)

Before us, in dazzling gold, stood a vast palace. Ornamented with countless jewels, set amidst landscaped gardens reflected in tranquil pools - a spectacle of unparalleled grandeur. Towering arches were intricately inlaid with great diamonds, sapphires, and emeralds. Men of angelic countenance were stationed by gates redly resplendent with rubies. .... I examined the vase; its jewels were worthy of a king's collection. I passed my hand over the room walls, thick with glistening gold. Deep satisfaction spread over my mind. A submerged desire, hidden in my subconsciousness from lives now gone, seemed simultaneously gratified and

existence). It is this "I" , the spiritual ego which gives a sense of *asmita* (separate existence) that really encloses or circumscribes the centre of Divine Consciousness and the destruction of the "I" means the disappearance of the circumference leaving only the Centre.

Before the destruction of "I" consciousness can take place many other tendencies which block the progress of the Yogi and which are sometimes referred to as fetters must be eliminated. Those Daityas whom Shumbha sent with an army to fight the Devi before he himself came to the battlefield symbolize these in the story. They have been given names such as Dhumra-Lochana, Chanda-Munda and Rakta-bija which are significant. We could try to correlate these names with particular tendencies referred to above but it is better not to enter this controversial ground. For, ideas regarding the nature of these tendencies and the names used for them differ in different systems of Yoga although they succeed in bringing about the same result ultimately. So we should be content here with the general statement that in his progress towards the goal of Liberation or Enlightenment different kinds of subtle undesirable tendencies which bar the path of the Yogi come up and are destroyed by the Divine Power working within him. When he is free from these tendencies he is ready for the final struggle in which his ego is liquidated and he stands free with his consciousness united

"I can give my hand only to him who conquers me by superior power."

The second interesting point in the third part of the story is the use of certain sounds by the Devi in killing certain Daityas. The use of *mantras* or particular combinations of sounds in spiritual unfoldment are well known. These *mantras* or mystic syllables are frequently utilized in Yogic practice for removing certain tendencies or unfolding certain states of consciousness. Besides this, certain sounds or combinations of sounds are used at the time of initiations to bring about a temporary expansion of consciousness. However, naturally all these things are kept strictly secret and no one can know them until he is ready for the particular stage of development.

Then we come to another significant feature of the story. It will be remembered that after Chanda-Munda were killed another army was sent by Shumbha under the command of Rakta-bija. But before the battle began all the Devatas sent their specific Powers to help the Devi in her fight with the Daityas. On this occasion, however, the Powers retain their separate identity and do not coalesce as on the previous occasion when Mahishasura was killed. What does this signify? That it is only in the third stage after the lower self has been completely mastered and some other tendencies

to this time. As is well known, it is only after the disciple has reached a certain stage of spiritual development that he is allowed to develop Yogic Powers systematically in the *Sadhana - Chatustaya* or the fourfold discipline for Liberation.

It is also worth noting in this connection that the Devi gives to Shumbha the option to retire to the nether regions after restoring the kingdom of Heaven to the Devas. This means that it is not necessary for the Yogi to proceed to the last step, which means the destruction of his "I", and Liberation. He can retain his separate identity and the use of the lower *siddhis* if he so desires. But if he wants Liberation and the Supreme Spiritual Power, which accompanies Liberation then his separate identity or ego must disappear. **There is no other way**.

The description given in the Durga Saptashati of the final battle of the Devi with Shumbha throws some light on the manner in which the destruction of the "I" or the ego takes place. The withdrawal by the Devi of all Her different forms into Herself represents the fact that the in last stages of the destruction of the ego, before Self-Realization it is the Spiritual Power in its purity which is functioning and not any one of its differentiated forms. The struggle has been shifted to the highest or subtlest level and this is to be expected.

that the last stage of the battle is fought in *Akasha* obviously means that the "I" of the Yogi is attenuated progressively and it must be reduced to its subtlest form before it can be eliminated.

The last point that we may note in this allegory is the significance of the difference in the boons granted by the Devi to Suratha and Samadhi. This no doubt hints at the existence of the two paths, which are open to the Self-realized Yogi after attaining Liberation. One path leads back to the world he has transcended and he carries on the Divine work in the lower worlds and helps his brethren who are still struggling in the realms of illusion and limitations. The other path takes him out of the lower worlds of manifestation to do some work in the spiritual realms about which we can have no conception.

A close and careful study of the Hindu scriptures should convince anybody who has some insight into these things that it is not only the Vedas, Upanishads, the philosophical works, and such other high class literature which are the repository of the highest philosophical and religious truths, but even popular literature like the *Puranas* contains, as an integral part of it, the highest wisdom though in a veiled form. In fact, it is this dilution of wisdom with stories and illustrations which has made it easily assimilable,

there are a thousand who study them clothed in the popular form of stories, and that is how these truths have continued to influence and inspire the masses, generation after generation.

What has been said concerning the presentation of spiritual ideals through stories holds well also about the presentation of spiritual and philosophical concepts in the form of symbols. The deeper truths of spiritual life are really beyond the garbs of the lower mind and are matters of direct realization in the deeper states of consciousness. Nevertheless, a keen and trained intellect may be able to deal with these truths, partially and indirectly, in the form of philosophical conceptions and concepts. The ordinary man finds it very difficult to understand them or to take any real interest in them.

Are the masses then to be deprived completely of the benefit of knowing these truths? The art of symbolism was created to enable the ordinary man to derive at least some advantage from these ideas, to keep alive his interest in them and thus make possible the transmission of these precious ideas from generation to generation as part of the general culture and heritage. A symbol is a concrete thing which every man can see and remember. If he understands its inner significance well, the symbolic representation does not interfere with his understanding of the truth. On the other

with the truth and derive some inspiration from it. Even the most learned philosopher can, at best, know the truth very vaguely as long as he has not realised it directly. Even if he takes the thing literally, which is hardly possible for any sane person, he carries in his mind a form which can be invested with life and meaning quite easily. In fact, it will be difficult to find any individual in India, in whose mind these symbols associated with Divine life are not associated in some degree with meaning and who does not feel more or less devotion towards them. We thus see that symbols and allegories may to a certain extent step down the truths of the higher life and may even debase them, but they keep them alive and thus enable the common people to derive some measure of inspiration from them.

We should realise what an important part symbolism plays in our life. Language through which we communicate ideas is purely symbolical in character. We assign certain meanings to words and then use these words as coins or counters for the communication of ideas. There is no natural relationship between words and the ideas for which they stand except when they are used for their sound effect in *Mantra Yoga*. When for example, the word Prasannam is used in the *dhyana-mantra* of Mahesha we use a sound for representing the state of *ananda* (bliss) in which He lives. When a smile is shown on His face in a

time to the study of Hindu religion and done much to spread this knowledge among Western people. But they have done it in a purely academic spirit, regarding these things as relics of the phases through which the Hindu mind has passed in the past and to which it is clinging rather credulously in the present. The westerners have studied the Hindu Literature with the same detachment and care with which they have studied the primitive custom of tribes in the heart of Africa.

Durga Saptashati not only contains lot of messages for Sadhaks, but also for Society. It seeks to regulate our lives ideally. Through different wars that Devi fought with Daityas, we learn many lessons. The army of Devi invites the combined force of Women in the country. Is not the valour shown by Devi manifest in Durgavati, Lakshmi Bai etc. Indian Queens. Maha Shakti does incarnate for killing demon kings like Ravana, Kansa, Duryodhana etc. In the ninth chapter of Durga Saptashati, the valour shown by Kali, Chandi, Kaumari, Brahmani, Maheshwari, Varahi, Vaishnavi, and Aindri depicts how Women Power in the Country should unite and assemble like an invincible army to defend itself and save the country from chaos it is in today. All men should derive a lesson from the 6th verse in Chapter 11 : "Vidya Samasta Stav Devi Bheda, Striya Samasta Sakla Jagatsu" meaning that "*Devi, All branches of knowledge are Your different Incarnations and All Women in the*

Saptashati also contains lessons for the countries. The Society should be petal soft at heart but cruel in dealing with enemies of country. Look at how Devi destroys Rakta-bija, without allowing any blood drop to fall on earth. It destroys the enemy completely. It is a great political and diplomatic theory for leaders of any country (Aiva Mesha Shayam Daityaha Shin Rakto Gamishyati, Durga Saptashati 8/55). Consider yourself as Lion the Vahana of Maha Maya and seek to eliminate destructive forces, which are enemies of the society. Durga Saptashati tells us that women are courageous, learned, saints and are in fact many incarnations of Devi Herself. In the Divine Mother concept, the Goddess is supposed to love Her children just because we are Her children. She is always ready to forgive everything and gather us into Her protective, nourishing bosom.

- Compiled by : R. K. Bhatnagar 9.4.1995
For IP Lodge Talk